विपासना और कुंडलिनी

इक-दूजे के लिए

प्रेमयोगी वज्र

"विपासना और कुंडलिनी- इक-दूजे के लिए" की आकर्षक दुनिया में, एक परिवर्तनकारी यात्रा पर निकलने के लिए तैयार हो जाइए जो सामान्य से परे है। शांत आत्म-खोज की पृष्ठभूमि पर आधारित, यह उपन्यास दो प्राचीन प्रथाओं - **विपश्यना ध्यान** और **कुंडलिनी योग ध्यान**- के सम्मिलन की पड़ताल करता है, जहां मन और आत्मा के जटिल धागे एक-दूसरे से जुड़कर गहनता का ताना-बाना बुनते हैं।

विपश्यना ध्यान के साथ अंतर्दृष्टि की कला में गहराई से उतरें, जहां प्रत्येक सांस निर्णय से मुक्त आंतरिक अवलोकन का प्रवेश द्वार बन जाती है। जैसे ही मन के शांत पानी में कमल की तरह सचेतनता खिलती है, नश्वरता का अनावरण होता है, जो साधकों का दुनिया को टालने के बजाय दुनिया को अपनाने के साथ जीवन के तूफानों से निपटने के लिए मार्गदर्शन करता है।

कुंडलिनी योग ध्यान के दायरे में यात्रा करें और रीढ़ की हड्डी के आधार पर कुंडली मारे हुए सर्प को जगाएं। सांस, मंत्र और गति के माध्यम से, सुप्त ऊर्जाएं ऊपर उठती हैं, चक्र जागृत होते हैं और चेतना का विस्तार होता है। शरीर, सांस और आत्मा का यह रासायनिक संलयन भीतर की आग को प्रज्वलित करता है, आत्मज्ञान की ओर प्रेरित करता है और सांसारिक और दिव्य क्षेत्रों को जोड़ता है।

जब विपश्यना और कुंडलिनी के मार्ग मिलते हैं, तो जागृति की एक लय उत्पन्न होती है। अंतर्दृष्टि आगे बढ़ती है, ज्ञान झरता है, और समता और उत्साह का सामंजस्यपूर्ण संलयन आकार लेता है। साधकों के प्रत्यक्ष वृत्तांतों के माध्यम से, उनके संघर्षों, रहस्योद्घाटनों और उन उज्ज्वल क्षणों को देखें जहां विपश्यना और कुंडलिनी आपस में जुड़ते हैं, जो आत्मज्ञान के गहन यिन और यांग की एक झलक पेश करते हैं।

"विपासना और कुंडलिनी- इक-दूजे के लिए" अनुभवी ध्यानियों और जिज्ञासु नौसिखियों को दो प्रतिष्ठित परंपराओं के पारस्परिक रासायनिक नृत्य का पता लगाने के लिए प्रेरित करता है। शांति को अपनाएं, अपने भीतर के सर्प को जगाएं और आत्म-खोज और परिवर्तन की इस मनोरम यात्रा में विपश्यना और कुंडलिनी के संगम पर मौजूद रहस्यों को उजागर करें।

इस पुस्तक के सभी अध्याय मूल रूप से हमारे पहले के निम्न काम का हिस्सा हैं; 'कुंडलिनी विज्ञान' शृंखला की 'आध्यात्मिक मनोविज्ञान' पुस्तकें। यदि आपने इनका आनंद लिया, तो आपको संपूर्ण संकलन में और भी बहुत कुछ मिलेगा।

अध्याय-1

कुंडलिनी योग ध्यान साधना से आदमी आस्तिक बनता है

दोस्तों, मैं हाल ही में एक ब्लॉगपोस्ट पढ़ रहा था जो मुझे अच्छी लगी। हालांकि उसमें मुझे अपनी टिप्पणी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। उसमें लिखा था कि सिर्फ़ हिंदु धर्म ही आस्तिक धर्म है, अन्य सब नास्तिक हैं। संस्कृत शब्द आस्तिक 'अस्ति' शब्द से बना है, जिसका मतलब 'है' होता है। मतलब जो 'है' अर्थात नामरूप से रहित सत्ता मात्र को मानता है, वह आस्तिक है। 'न अस्ति अर्थात नास्ति' का मतलब 'नहीं है' है। जो 'नहीं है' को मानता है, वह नास्तिक हुआ। वैसे भी नामरूप का आस्तित्व तो है ही नहीं। बर्फ से जल बनता है, जल से भाप, भाप से बादल और उससे पुनः जल बनता है। इतने नाम और रूप बदले पर रहता सब में जल ही है। अगर हम इस कार्य कारण की परंपरा को पीछे से पीछे बढ़ाते जाएं तो सबकुछ सूक्ष्म से सूक्ष्म होता जाता है, और अंत में आकाश ही बचता है। मतलब सबकुछ आकाश या शून्य या आत्मा रूप ही है। शून्य भी अभाव या अंधकारनुमा नहीं बल्कि अनिर्वचनीय रूप वाला शून्य। इसीलिए हिंदू धर्म पलायनवादी जैसा भी लगता है, पर असल में ऐसा नहीं है। असली आस्तिक वह नहीं जो नामरूप को बिल्कुल नकारता है। बल्कि असली आस्तिक वह है जो सच्चे व असली अस्तित्व को नामरूप वाले झूठे और नकली अस्तित्व से ऊपर माने। अगर नामरूप को बिल्कुल नहीं मानेंगे तो दुनियादारी कैसे चलेगी, कैसे मानव सभ्यता का विकास होगा। ऐसे में तो सभी विरक्त संन्यासी जैसे हो जाएंगे। सारा विज्ञान नामरूप के आश्रित है। किसी वस्तु को नामरूप नहीं देंगे तो उसे समझेंगे कैसे और कैसे उसे वश में करेंगे। नामरूप न मानने से विज्ञान संभव ही नहीं होगा। दूसरी ओर, अन्य धर्म भी पूरी तरह से नास्तिक नहीं हैं। असली नास्तिक वह नहीं है जो सिर्फ नामरूप को ही माने और शुद्ध अस्तित्व को नकारे। बल्कि असली नास्तिक वह है जो नामरूप के अस्तित्व को शुद्ध और असली अस्तित्व से ज्यादा महत्त्व दे। नामरूप के अस्तित्व को मानते समय शुद्ध अस्तित्व तो खुद ही मानने में आ जाता है, क्योंकि 'है' तो सबके साथ लगता है। शुद्ध 'है' का अस्तित्व और नामरूप का अस्तित्व एकदूसरे के आश्रित हैं, और दोनों एकदूसरे के साथ रहते हैं। ये एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते। फर्क यह है कि मन में किसे ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। मतलब मन की धारणा का ही अंतर है। आस्तिक की दुनियादारी भी वैसी ही चलती है जैसी नास्तिक की। फर्क दोनों की विचारधारा या मन की धारणा का होता है। सिर्फ मन की धारणा के बदलने से ही आकाश-पाताल के जैसा विपरीत असर पैदा हो जाता है। मतलब साफ है कि कोई भी पूरा आस्तिक या पूरा नास्तिक नहीं हो सकता। व्यवहार में सब मिश्रित स्वभाव के होते हैं। मन की धारणा को आस्तिक बनाए रखने के लिए ही विभिन्न धर्मशास्त्र बने हैं। अध्यात्म केवल मन की धारणा को सुधारता है। दुनियादारी तो विज्ञान से ही चलेगी। मन की धारणा का बनना और सुधरना एक सहज प्रवृत्ति है, वैसे ही जैसे आदमी सुख के अनुभव की तरफ खुद ही खिंचा चला जाता है। इसमें मुझे धर्म का बहुत ज्यादा योगदान नहीं लगता। आदमी को यह धर्म तो नहीं सिखाता कि कौन सी परिस्थिति सुखद है, बल्कि आदमी अपने अनुभव से खुद ही सीखता है। वैसे भी मानव मनोविज्ञान बहुत जटिल और विविधतापूर्ण है। इसके संबंध में ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता, जैसा कि जड़ वस्तुओं के लिए गुरुत्वाकर्षण आदि जैसा सामान्य नियम बनाया जाता है। यहां तो हरेक आदमी का मन अपने आप में अद्वितीय है, जिसके लिए नियम भी अद्वितीय ही होना चाहिए। हां धार्मिक पुस्तक सबके लिए एक सामान्य साधारण सिद्धान्त का बखान कर सकती है, पर वह भी सर्वसम्मत और वैज्ञानिक या अध्यात्मवैज्ञानिक रूप से प्रमाणित होना चाहिए। हालांकि उसके भी मानवीय अपवाद हो सकते हैं। लौकिक व्यावहारिक कदम तो आदमी को समय व परिस्थिति के अनुसार खुद ही उठाने पड़ते हैं। मतलब सब कुछ लिखा या बताया नहीं जा सकता। इसीलिए हरेक धर्म में हर किस्म की धारणा के लोग मिल जाएंगे। हां, विभिन्न कारणों से प्रोपोर्शन या अनुपात अलग-अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए, यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है। इस पर युधिष्ठिर ने जवाब दिया कि लोग रोज मरते हैं, पर ऐसा देखते हुए भी जीवित आदमी ऐसा सोचते हैं कि वे कभी नहीं मरेंगे। इससे बड़ा कोई आश्चर्य नहीं। इस जवाब से यक्ष संतुष्ट हो गया। इस कथानक को सकारात्मक धारणा वाला आदमी ऐसे लेगा कि जिंदादिली से जीवन बिताते हुए भी आदमी को यह हमेशा याद रखना चाहिए कि कभी उसके जीवन का अंत हो जाएगा, इसलिए जीवन के प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। मतलब नामरूप में आसक्ति न रखो मतलब दुनियादारी को देशकाल के अनुसार बरतते हुए भी आस्तिक धारणा को अपनाओ, नास्तिक धारणा को नहीं। पर नकारात्मक धारणा वाला आदमी इसको ऐसे लेगा कि जीवन में कुछ नहीं रखा है, इसलिए हमेशा मरे हुए जैसे की तरह रहना चाहिए। नामरूप से भरी दुनियादारी को पूरी तरह से त्याग दो और घोर अर्थात कट्टर अर्थात पूर्ण आस्तिक बनो। धर्मशास्त्र ने तो अपनी तरफ से अच्छा कथानक लिखा था, पर उसके लेखक को क्या पता कि कई लोग इसका गलत अर्थ निकाल सकते हैं। इसी तरह गुरु भी अपने जीवन के अनुभव से सामान्य नियम और सिद्धांत ही समझा सकते हैं, हर कदम तो वे भी साथ नहीं चल सकते।

कुछ पल सांस रोकने से और फिर लंबी गहरी सांसों से विचारों के शुद्ध अस्तित्व पर ज्यादा ध्यान जाता है, और उनकी नामरूप वाली विविधता पर कम। अगर उस प्राणायाम के साथ कुंडलिनी शक्ति का साथ भी मिले तो प्रभाव

कई गुना बढ़ जाता है, क्योंकि उससे दबे विचारों के उघड़ने को ज्यादा बल मिलता है, जिससे आस्तिकता और ज्यादा प्रभावी बन जाती है। तांत्रिक बल से तो प्रभाव उससे भी कई गुना बढ़ जाता है। तेज और उथली सांस से विचार सांस के साथ लगातार बदलते रहते हैं। इससे उनके सतही नामरूप पर ही ध्यान जाता है, उनकी गहराई में जाने का समय ही नहीं मिलता। पर जब सांस धीमी, लंबी या रुकी होती है, तब मन का एक ही विचार सांस के रुके रहने तक या एक सांस के पूरा होने तक या लगातार कई सांसों तक बना रहता है। इससे वह विचार हमें पैदा होते, बढ़ते, ठहरते और आत्मा में विलीन होते दिखता है। ॐ शब्द भी इसी प्रक्रिया को दर्शाता है, जिसमें अ, उ और म अक्षर क्रमशः पैदा होने को, बढ़ने और रुकने को और विलीन होने को दर्शाते हैं। ॐ सहस्रार का बीजमंत्र इसलिए है क्योंकि मस्तिष्क में ही सारा ब्रह्मांड विचारों के रूप में पैदा होता रहता है, बढ़ता रहता है और विलीन होता रहता है। इस अक्षर की दो भुजाओं में जो दो तीखे मोड़ या रिंग हैं वे त्रिआयामी हैं, कागज पर दो आयामी दिखते हैं। बाईं तरफ का रिंग बाएं मस्तिष्क के कर्वेचर के साथ दुसरी तरफ को मुड़ जाता है, और दाईं ओर का कर्वेचर दाएं मस्तिष्क में पीछे की तरफ को कवर करता है। मतलब ओम से पूरा मस्तिष्क कवर हो जाता है। इसके ऊपर जो चंद्र बिंदी है, वह सहस्रार चक्र बिंदु है। इससे हमें महसूस हो जाता है कि नामरूप तो मिथ्या ही थे, विचारों का असली रूप तो शून्य आकाश या आत्मा जैसा ही है, यानि बिना नामरूप की सत्ता मात्र ही असली है, जहां से वे पैदा होते दिखते हैं और उसमें विलीन होते भी दिखते हैं। तेज और उथली सांसों से विचार फटाफट बदलते हैं। इसलिए न तो हमें वे शून्य आत्मा से पैदा होते दिखते हैं और न ही शून्य आत्मा में विलीन होते दिखते हैं। इससे वे हमें सत्य से दिखते हैं। हमें लगता है कि वह पुराना विचार जिसकी जगह अब नए विचार ने ले ली है, वह सत्य है, और हमारे दिमाग ने ही उसकी जगह नया विचार पकड़ लिया है। वैसे भी उथली तेज सांसों पर ध्यान देना कठिन है।

मतलब साफ है कि कुंडलिनी योग से आस्तिक बनने में मदद मिलती है। इसकी एक वजह यह भी है कि कुंडलिनी योग के समय सांस और शरीर पर ध्यान कायम रहने से विचारों के नामरूप पर ज्यादा ध्यान नहीं जाता और केवल उनके अस्तित्व का ही बोध होता रहता है। यह साक्षीभाव साधना की तरह ही है, मतलब हम उन्हें साक्षी की तरह देख रहे होते हैं। और उनसे प्रभावित नहीं होते। साथ में, योगासन के समय शरीर निश्चित पोज में रहता है, और विचारों के अनुसार प्रतिक्रिया या हिलने जुलने का विरोध करता है। इससे भी विचारों की नामरूपता प्रभावी नहीं हो पाती।

विचारों का हैंडल सांस है। ऐसा इसलिए क्योंकि विचार सांसों के साथ तालमेल बैठा कर गति करते हैं। बिना सांसों के विचारों को पकड़ना बहुत कठिन है। सांस को देखते रहने का मतलब है विचारों को देखना मतलब साक्षी भाव। जब हम सांसों को नहीं देख रहे होते तब विचारों को भी नहीं देख रहे होते। उस समय हम खुद विचार बने होते हैं। जब हम सांसों को नहीं देख रहे होते तो खुद सांस बने होते हैं। अपने को तो कोई नहीं देख सकता। देखा तो दूसरे को ही जाता है। मतलब तब साक्षीभाव नहीं रहता। दो ही भाव हो सकते हैं, या तो दर्शक भाव या दृश्य भाव। यदि देखने वाले का दर्शक भाव नहीं है तो खुद ही दृश्य भाव पैदा हो जाता है। मतलब दर्शक दृश्य से आसक्तिपूर्वक जुड़कर दृश्य ही बन जाता है। ऐसा पिता को अपने पुत्र को मैदान में खेलते देखते समय हो सकता है। अगर दर्शक भाव है तो दृश्य भाव नहीं हो सकता। दोनों भाव एकसाथ नहीं रह सकते। दर्शक भाव का यह लक्षण है कि वह दृश्य के सुख दुख से प्रभावित नहीं होता। अगर आदमी अपने विचारों से प्रभावित हो रहा है तो उसका मतलब है कि उसका दृश्यमान विचारों के प्रति दर्शक या साक्षी भाव नहीं बल्कि दृश्य या आत्मभाव है। विचारों को आत्मरूप समझो तो वह ज्ञान है, पर अगर आत्मा अर्थात आदमी विचाररूप बन जाए तो वह अज्ञान है।

इस मामले में एक तिब्बती बौद्ध योगी की बात अच्छी लगी कि सांस पर भी ध्यान रखो और विचारों पर भी, मतलब विचारों को भी खुला छोड़ दो, तभी मेडिटेशन होती है। मतलब विचारों को न तो दबाओ और न ही उनकी अवहेलना करो। जब सांसों पर ध्यान रहेगा या बीचबीच में जाता रहेगा तब खुद ही उनसे लगाव कम हो जाएगा और उनके प्रति दर्शक भाव पैदा हो जाएगा।

संभवतः जो कई बार समझा जाता है कि निर्जीवता का एकसार अंधेरा ही नामरूपता से रहित है, वह गलत है। दरअसल उस अंधेरे के रूप में नामरूप वाले दुनियावी विचार सूक्ष्म रूप में स्थित होते हैं, जो मौका मिलने पर पुनः स्थूल रूप में प्रकट हो जाते हैं। असली नामरूप से रहित सत्ता तो पूर्ण शुद्ध आत्मा अर्थात परमात्मा की ही है, जो अनिर्वचनीय है। हालांकि उसकी प्राप्ति नामरूप वाली दुनिया से ही होती है, क्योंकि कण कण में उसका वास है।

शास्त्रों में लिखा मिलता है कि निर्जीवता के अंधेरे का अस्तित्व नहीं है। वह हमें दुनियादारी की आसक्ति से पैदा हुए भ्रम से महसूस होता है। यह ऐसा ही भ्रम है जेसे गोल चक्के पर घूमने के बाद उससे बाहर उतरकर चारों ओर की सभी चीजें भी कुछ समय घूमती हुई दिखाई देती है। जितनी तेजी से या जितने समय तक हम उस पर घूमते हैं, वे चीजें भी उतनी ही तेजी से और उतने ही ज्यादा समय तक घूमती महसूस होती हैं। इसी तरह जिस किस्म की दुनियादारी होगी, उसके बाद का निर्जीवता का अंधेरा भी वैसा ही महसूस होगा। इसी को सूक्ष्म शरीर कहा जाता है। फिर तो जैसे घूमने का अहसास थोड़ी देर बाद खत्म हो जाता है, वैसे ही कुछ समय बाद सूक्ष्म शरीर का अंधेरा भी वैसे ही छंट

जाना चाहिए। मतलब आदमी मृत्यु के बाद खुद मुक्त हो जाना चाहिए। पर शास्त्रों में ऐसा कहीं नहीं लिखा है। तर्क बुद्धि से तो ऐसा लगता है कि जेसे घूमने के झूठे एहसास के बाद आदमी अपनी पूर्व की दुनिया वाली अवस्था में आ जाता है, इसी तरह निर्जीवता के भ्रम के बाद आदमी अपनी पुरानी दुनियावी जिंदगी में फिर से प्रवेष कर जाना चाहिए मतलब उसका पुनर्जन्म हो जाना चाहिए। पर जिसने पहले पूर्ण मुक्ति का या जागृति का अनुभव कर लिया हो, शायद वह अपनी पूर्व की मुक्ति वाली अवस्था में चला जाता हो मतलब मुक्त हो जाता हो। यह बात फिर भी कुछ कुछ शास्त्रसम्मत लगती है। जो ब्लैकहोल जितना ज्यादा भारी होता है, वह उतना ज्यादा प्रकाश को निगल कर अपने अंदर उतना ही ज्यादा अंधेरा पैदा करता है। उसी आभासी अंधेरे के रूप में उसके मूल सितारे की सूचना उसमें संचित रहती होगी। हो सकता है कुछ समय बाद वह अंधेरा उसी जैसे सितारे के रूप में फिर से जन्म ले लेता होगा। इसको वैज्ञानिक कहते हैं, व्हाइट होल से उसकी ऊर्जा का निकलकर किसी दूसरे ब्रह्मांड में चले जाना। जबकि जो कम वजन के सितारे होते हैं, उनके नष्ट होने से थोड़े समय के लिए अंधेरा रहता है, और वे अनंत ऊर्जा से भरे अनंत आकाश में विलीन हो जाते हैं, मतलब मुक्त हो जाते हैं। वे हमारे संन्यासियों और वैरागियों की तरह होते होंगे, जो अपनी दुनियादारी को हल्का रखते हैं।

अध्याय-2
कुंडलिनीयोगानुसार ओम ॐ ही वह सिंगुलेरटी है जिसमें ब्लैकहोल समा जाता है

ब्लैकहोल में जो भी पदार्थ रूपी सूचना जाती है, वह नष्ट या अज्ञात रूप में रहती है। उसी तरह आदमी का अवचेतन मन भी उसकी सभी विचाररूपी सूचना को अनादिकाल से लेकर अपने अंदर नष्ट रूप में संजोकर रखता है। जब उन विचारों को साक्षीभाव साधना आदि से प्रकट या अभिव्यक्त रूप में वापिस लाया जाता है, तब वे धीरे धीरे ढीले होकर परमात्मा में विलीन होने लगते हैं। जब सभी विचार विलीन हो जाते हैं, तो जीवात्मा या सूक्ष्मश्रीर मुक्त हो जाता है। संभवतः ब्लैकहोल से भी इसी तरह बारबार स्थूल सृष्टि बनते रहने से वे सूचनाएं ढीली होती रहती हैं और अंत में महाकाश रूपी परमात्मा से एकाकार हो जाती हैं और पुनः कभी वापिस नहीं आतीं। मतलब ब्लैकहोल मुक्त हो जाता है। यहां एक पेच है। बारबार स्थूल सृष्टि बनने से ब्लैकहोल मुक्त नहीं होता, जैसे आदमी बारबार जन्म लेने से खुद मुक्त नहीं हो जाता। जब ब्लैकहोल से सूचनाएं सूक्ष्मरूप में लगातार बाहर निकलती रहती हैं, उन्हीं के रूप में वह महाकाश में विलीन होता है, सीधा नहीं। संभवतः वे सूक्ष्म सूचनाएं ही हॉकिंस रेडिएशन हैं, जिनके रूप में कभी पूरा ब्लैकहोल विलीन हो जाएगा। बेशक इसमें बहुत ज्यादा समय लगता है। जीव की मुक्ति में भी कम समय कहां लगता है। ब्लैकहोल से हॉकिंस रेडिएशन भी निकलती रहती हैं, और वह साथसाथ में नई सृष्टि भी बनाता रहता है, बेशक नई सृष्टियों का आकार धीरे धीरे घटता जाता है। इसी तरह आदमी की साक्षीभाव साधना भी कम या ज्यादा रूप में चलती रहती है, और साथसाथ में उसके नए नए जन्म भी होते रहते हैं, बेशक आगे आगे के जन्म में मन के विचारों का शोर कम होता जाता है, अहंकार घटता जाता है।

विज्ञान कहता है कि ब्लैकहोल के अंदर जितना पदार्थ घुसता जाएगा, उसका गुरुत्व बल उतना ही बढ़ता जाएगा, और उसके बाहर की एकरीशन डिस्क उतनी ही मोटी होती जाएगी। पहले मैंने सोचा कि ऐसा कैसे हो सकता है कि जब नया अनंत आकाश बन गया, तब तो उसमें घुसे हुए पदार्थ अनंत आकाश में फैल जाने चाहिए, और उनका प्रभाव एकरीशन डिस्क पर नहीं पड़ना चाहिए। साथ में, जब एकबार मूल अनंत आकाश में अनंत गड्ढा बन गया, तब अंदर और पदार्थ घुसने से वह गड्ढा और ज्यादा कैसे बढ़ सकता है, क्योंकि अनंत से बड़ा तो कुछ भी नहीं है। और ग्रेविटी बढ़ने का मतलब ही अंतरिक्ष में गड्ढे की गहराई बढ़ने से है वास्तव में। पर मुझे इसका हल जीवात्मा से इसकी तुलना करने पर मिला। जब पहली बार जीवात्मा रूपी व्यष्टि-अनन्ताकाश बनता है, तो वह नए बने ब्लैकहोल की तरह होता है। पहली बात, जीवात्मा कैसे बनता है। जब किसी सबसे छोटे जीव में मन का पहला विचार बनता है, तो चिदाकाश अर्थात परमाकाश परमात्मा उसे अपने अंदर महसूस करता है। उस विचार की तरफ़ आसक्त होकर वह तुरंत अपने परमाकाश या महाकाश रूप को भूल जाता है। रहता वह महाकाश ही है, पर भ्रम से अपने परम सत्ता, ज्ञान (सत्य ज्ञान) और आनंद को काफी हद तक भूल जाता है। यह महाकाश के अंदर जीवाकाश की उत्पत्ति हो गई। हालांकि महाकाश परमात्मा बिना परिवर्तन का, वैसा ही, अपने मूलरूप में रहता है। मतलब यह परमात्मा के अंदर जीवात्मा की उत्पत्ति हो गई। अब ब्लैकहोल पर आते हैं। मूलाकाश के अंदर किसी बड़े तारे का ईंधन खत्म हो गया। तो उसके अंदर की तरफ़ के गुरुत्व बल का मुकाबला करने के लिए बाहर की तरफ़ का गर्म गैसों का बल नहीं रहता। इससे वह अपने भीतर ही भीतर लगातार सिकुड़ कर सबसे छोटे संभावित रूप तक पहुंच जाता है। मुझे तो लगता है कि वह रूप मन का सबसे सूक्ष्म विचार ही है। क्योंकि उसके सामने तो प्रोटोन, इलेक्ट्रॉन आदि मूलकण भी स्थूल ही है। सबसे छोटा विचार ॐ की मानसिक आवाज है। इसका प्रमाण यह है कि इसके साथ आत्मा को अपने पूर्ण रूप का सबसे कम भ्रम पैदा होता है। यहां तक कि भ्रम खत्म भी होने लगता है। इसीलिए ब्रह्मज्ञानी व पूर्ण योगियों के मुंह से ॐ का उच्चारण अनायास ही होता रहता है। दूसरे विचार तो जितना बढ़ते रहते हैं, भ्रम भी उतना ही बढ़ता रहता है। तो सबसे छोटी चीज ओम ध्वनि हुई। जीवात्मा की उत्पत्ति भी संभवतः ॐ से ही होती है, क्योंकि यत्पिंडे तत् ब्रह्मांडे। स्थूल वस्तु आकाश में छेद नहीं कर सकती। अगर ऐसा होता तो हरेक पत्थर एक अलग जीव या जीवात्मा होता, हरेक मूलकण जिंदा होता, और अपना अलग से अनंत आकाश वाला पृथक अस्तित्व महसूस करता। पर ऐसा नहीं होता। केवल मन का विचार ही आकाश में छेद कर सकता है। इसीलिए जितने शरीर अर्थात मस्तिष्क या मन हैं, उतने ही अनंताकाश रूपी जीव हैं। इसीलिए नया ब्रह्मांड बनाने के लिए मन की जरूरत पड़ती है, क्योंकि वह तभी बनेगा जब आकाश में छेद होगा। ॐ वही सूक्ष्मतम मन है। इसीलिए कहते हैं कि ईश्वर या ब्रह्मा के संकल्प या विचार से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। तारे से बने ओम से उसके दायरे का मूलाकाश अपना मूलरूप भूलकर नया ही पूर्ण आकाश बन जाता है। हालांकि मूलाकाश वैसा ही रहता है। इसीको विज्ञान की भाषा में कहा गया है कि तारे से बनी सिंगुलरिटी से अंतरिक्ष में अनंत गहराई का गड्ढा बन जाता है। शायद ॐ को ही विज्ञान में सिंगुलरिटी कहा गया है, क्योंकि पता ही नहीं कि वह क्या है। बस यह अंदाजा लगाया है कि वह सबसे छोटी चीज है। सम्भवतः हमने सिद्ध कर दिया कि वह सबसे छोटी चीज ॐ ही है। फिर कहते हैं कि उसी सिंगुलरीटी में विस्फोट से सृष्टि का निर्माण फैलने लगता है। शास्त्रों

में भी यही कहा है कि ॐ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इस सबसे यह अर्थ भी निकलता है कि एक छोटे से विचार में भी सैंकड़ों सूर्यों के बराबर द्रव्यमान समाया हुआ है, इसी वजह से तो वह मूल आकाश की त्रिआयामी चादर में इतना बड़ा गड्ढा कर देता है कि एक नया ही आकाश बन जाता है, मतलब एक नया स्वतंत्र जीव रूपी नया स्वतंत्र ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आ जाता है। पर यह आश्चर्य की बात है कि ब्रह्माण्ड की रचना कर सकने वाला जीव कैसे दयनीय, और परतंत्र सा बना रहता है। तो अगर कल को वार्प ड्राइव बनी, तो वह ऐसी ही कोई ॐ मशीन होगी, जो आकाश को जितना चाहे मोड़कर अन्तरिक्ष की सैर करवाएगी। हो सकता है कि एलियंस ऐसी ही मशीन की सहायता से धरती पर आते हों। तथाकथित यूएफओ क्रैश के बाद एलियन से साक्षात्कार के मामले से जुड़े लोग दावा करते हैं कि एलियंस के पास आध्यात्मिक तकनीकें होती हैं, और वे योगी की तरह अपने असली रूप को अच्छे से पहचानते हैं। उनके लिए धरती की मानव सभ्यता एक बंदरों की सभ्यता की तरह है।

फिर उत्पत्ति के बाद जीवात्मा अपना दायरा बढ़ाता है। वह आंख, कान आदि विभिन्न इंद्रियों से सूचनाएं ग्रहण करता रहता है, और बढ़ता रहता है। यह ऐसे ही है जैसे ब्लैकहोल बाहर के पदार्थ निगलता रहता है, और अपना द्रव्यमान बढ़ाता रहता है। जीवात्मा जितना महान होता है, उसके प्रभाव का दायरा भी उतना ही बड़ा होता है। जहां कीड़ों मकोड़ों का दायरा कुछ इंच या फीट तक होता है, वहीं महापुरुषों के मन के अंदर इतनी ज्यादा सूचनाएं होती हैं कि उनके प्रभाव का दायरा पूरे राष्ट्र या विश्व तक फैला होता है। पूरी दुनिया से लोग उनकी तरफ़ खिंचे चले आते हैं। उनके प्रभाव के दायरे की तुलना ब्लैकहोल की इकरीशन डिस्क से की जा सकती है।

ओम से सृष्टि बनती रहती है और उसमें समाती भी रहती है। कभी केवल एक तारे की जगह पूरी सृष्टि का द्रव्यमान सिकुड़कर ॐ के अंदर समा जाएगा। इसे परम ब्लैकहोल का बनना कहेंगे। उसे निगलने के लिए कुछ मिलेगा ही नहीं। इससे वह जल्दी ही भूखा मर जाएगा, मतलब फ़िर वह ॐ भी परमाकाश परमात्मा में समा जाएगा। इसे प्रलय कहते हैं। लंबे समय तक प्रलय बनी रहेगी। फिर सृष्टि के आरंभ में सारी पुरानी सृष्टि का द्रव्यमान समेटे हुए ॐ पुनः प्रकट हो जाएगा। उसमें बिग बैंग या महाविस्फोट होगा और सृष्टि की रचना पुनः प्रारंभ हो जाएगी। यह प्रक्रिया बारंबार दोहराई जाती रहती है।

अब कई लोग कहेंगे कि ब्लैकहोल ने तो ब्रह्मांड की तुलना में नगण्य सा ही पदार्थ निगला होता है, उससे इतना बड़ा नया ब्रह्मांड कैसे बन सकता है। पर भई अनन्त आकाश तो बन ही गया होता है। उसमें नए पदार्थ खुद भी तो बन सकते हैं। पुराने ब्रह्मांड से निगले हुए पदार्थ तो सिर्फ एक शुरुआत करते हैं। यह ऐसे ही है जैसे एक बच्चा अपने पिछले जन्म की सूचनाएं बहुत सूक्ष्म रूप में लाया होता है, जो कि पिछले पूरे जन्म की तुलना में नगण्य जितनी दिखती है। फिर वह बाहर से भी कुछ सूचनाएं इकट्ठा करता है, वह भी नगण्य जैसी ही होती हैं। अधिकांश सूचनाएं तो वह खुद अपने अंदर तैयार करता है अपनी रचनात्मकता से, अपने कर्मों से। इसी तरह सबसे पहले बनने वाले सूक्ष्म जीव में सिर्फ सूक्ष्मतम ओम विचार होता है, पर विकास करते करते वह ब्रह्मा भी बन जाता है, जिसमें पूरा ब्रह्माण्ड समाया होता है। इससे तो यह मतलब भी निकलता है कि ब्लैकहोल चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, वह बड़ा से बड़ा ब्रह्मांड बना सकता है, क्योंकि वह अनंत आकाश के रूप में अनंत आकार का बर्तन बना लेता है। और जहां बर्तन है, वहां बारिश का पानी भी इकट्ठा हो ही जाता है।

अध्याय-3
कुंडलिनी योग सबसे बड़े झूठ का पर्दाफाश करता है

दोस्तों, एक पोस्ट में सीमेंट के पर्यावरणीय दुष्प्रभाव बारे बात हो रही थी। वो तो वो, पर जो इसका इस्तेमाल भी करते हैं, वे भी ढंग से कहां करते हैं। सबसे ज्यादा ढिलाई इसमें पानी की सिंचाई रूपी उस क्योरिंग की रखी जाती है, विशेषकर सरकारी और ठेकेदारी कामों में, जो इसकी मजबूती के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। इससे संसाधन बर्बाद होते हैं, और हादसों से जानमाल के भारी नुकसान का अंदेशा बना रहता है। खैर, हम इन तकनीकी मामलों में न जाकर मूल विषय से भटकना नहीं चाहते। इस पर मेरी एक अन्य पुस्तक है, "बहुतकनीकी जैविक खेती एवम वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ"। इस पोस्ट में हम सबसे बड़े झूठ पर चर्चा करेंगे।

विचारों का शांतिपूर्वक अवलोकन करने का अर्थ है कि हम उनकी सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। यथार्थ सत्ता को। सूक्ष्म सत्ता को। आध्यात्मिक सत्ता को। मानसिक सत्ता को। अस्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। किसी पर आधारित सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। अपूर्ण सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। बुझे मन से उनकी सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। इससे जब विचार गायब होगा, तो हमें अभाव का अंधेरा महसूस नहीं होगा या कम महसूस होगा। साथ में अप्रत्यक्ष रूप से यह भी सिद्ध या विश्वास हो जाएगा कि जिस अभाव को हम अंधेरा समझते हैं, वह प्रकाश है, क्योंकि वहीं से ये विचार पैदा होकर उसी में विलीन होते रहते हैं। इससे आत्मा धीरेधीरे साफ होकर मुक्ति की तरफ़ चली जाएगी। अगर हम उनके वेग में बह जाएं, तो उसका मतलब होगा कि हम उनकी अयथार्थ सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। भौतिक सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। स्थूल सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। शारीरिक सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। पूर्ण सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। इससे जब विचार गायब होगा, तो हमें अंधेरा सा महसूस होगा। अगर हम उन्हें नकारने या हटाने की कोशिश करें, तो उसका मतलब होगा कि हम उनकी सत्ता को नकार रहे हैं। इसका भी अप्रत्यक्ष मतलब यह बनेगा कि हम अंधेरे की सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। इससे जीवन अंधेरे की ओर जाएगा ही। मतलब साक्षीभाव सबसे बड़ी अध्यात्मवैज्ञानिक साधना है। यह बौद्धों का सर्वोत्तम मध्यमार्ग है। साक्षीभाव में इसीलिए आत्मा से आंनद प्राप्त होता है। विचारों को भगा कर भी नुकसान और गले लगाकर भी नुकसान। इसलिए अपनी सांसों और अपने शरीर पर ध्यान देते रहो, और विचारों को आतेजाते रहने दो। बोलने की बात है कि साक्षीभाव ही सबकुछ है, योग आदि कुछ और करने की जरूरत नहीं। यह तो ऐसे कहना हुआ कि फल ही सबकुछ है, पेड़ आदि की कोई जरूरत नहीं। असली साक्षीभाव साधना तो योगसाधना के दौरान ही होती है। उस समय विचार मस्तिष्क में आ रहे होते हैं, और ध्यान और दृष्टि मूलाधार आदि शरीर के निचले हिस्सों या चक्रों पर होते हैं। इससे दो काम एकसाथ होते हैं। एक तो यिन मतलब निचला हिस्सा और यांग मतलब मस्तिष्क वाला हिस्सा आपस में जुड़ते हैं, और दूसरा यह कि मस्तिष्क के विचार आते हुए भी नजरंदाज से रहते हैं, जिससे उत्तम साक्षीभाव होता है। विचारों का बिनबुलाए मेहमानों की तरह स्वागत किया करो। जैसे हम बिन बुलाए मेहमान का स्वागत करते हुऐ भी उससे तटस्थ से रहते हैं, ऐसे ही विचारों के प्रति भी रहना चाहिए। मेन बात यह है कि आदमी 4 के सिग्नल से बने दृष्यों को देखना ही पसंद करते हैं, एसडी के सिग्नल वाले दृष्यों को नहीं। योग के दौरान मस्तिष्क में बनने वाले सिग्नल को 4k वाला समझो, और आम दुनियादारी में एसडी वाला या ज्यादा से ज्यादा एचडी वाला। इसीलिए योग के दौरान सबसे ज्यादा साक्षीभाव अर्थात मूकदर्शक भाव पैदा होता है। आम दुनियावी हालत में तो हम मानसिक दृष्यों के अनुरूप प्रतिक्रिया भी दे सकते हैं, पर योग के दौरान कैसे देंगे, क्योंकि मानसिक दृष्य के इलावा स्थूल रूप में कुछ भी नहीं होता। इसलिए मजबूरन शान्त होकर नजारा देखते रहना पड़ता है। इसीलिए कई लोग दूरदर्शन को भी अच्छा साक्षीभाव साधक कहते हैं, क्योंकि उसके लिए भी हम कोई प्रतिक्रिया नहीं दे सकते। इसीलिए काल्पनिक सी फिल्में सत्य घटनाओं पर आधारित फिल्मों से भी ज्यादा मजा देती हैं। क्योंकि जहां ऐसे दृष्यों के प्रति सत्यत्व बुद्धि जागी, वहां आत्म आनंद में खलल तो पड़ेगा ही।

साक्षीभाव साधना मतलब योगसाधना दिन में तीन बार की जा सकती है। दिन में तो लगता है सबसे जरूरी है शायद। उस समय शरीर की ऊर्जा शिखर पर होती है, जिससे दबे विचार खूब उभर सकते हैं, जिन पे अच्छे से साक्षीभाव हो सकता है। अगर जगह आदि की कमी हो तो कम से कम प्राणायाम तो किया ही जा सकता है। अगर बैठने की भी दिक्कत हो तो यह तो कुर्सी पर भी किया जा सकता है। चक्रों पर सांसें रोककर गहरा कुंडलिनी ध्यान लगाने से सिरदर्द भी हो सकता है, इसलिए दिन में प्राणायाम ही काफी है। सुबह और शाम की संध्या के समय जब मस्तिष्क को मूलाधार से अतिरिक्त शक्ति मिलती है, वह समय ध्यान के लिए सर्वोत्तम है। उस समय दुनियावी कामों का बोझ भी कुछ हटा जैसा होता है। शायद इसीलिए पुराने समय में त्रिकाल संध्या का काफी प्रचलन था। हर कोई तो हर समय आत्मजागरूकता में नहीं रह सकता, क्योंकि कइयों का काम विचित्र और जटिल सा होता है। जिनको लंबा अभ्यास है या जिन्हें सत्संग सुलभ है, वे रह भी लेते हैं। कर्मयोगी भी हर समय आत्मजागरूक रहता है, पर

कर्मयोग भी आसान नहीं है। इसीलिए आम आदमी के लाभ के लिए दिन में केवल तीन बार साधना का प्रावधान है, बाकि समय यथेच्छ व्यावहारिक काम करते रहो, साधना को रखो मेज पर।

समस्या तब होती है जब आदमी यथार्थ नहीं देखता। सत्य नहीं देखता। देखने में बुराई नहीं है। सच्ची चीज देखने में कोई बुराई नहीं है। बुराई है झूठी चीज देखने में। विचारो को सूक्ष्म रूप में देखना सत्यदर्शन है, पर उन्हें स्थूल और भौतिक रूप में देखना असत्यदर्शन है। विचारों को अपने शरीर या मन के अंदर देखना सत्यदर्शन है, पर उन्हें अपने से बाहर देखना असत्यदर्शन है। विचारो को अपने रूप में मतलब अद्वैतरूप व आत्मरूप में देखना सत्यदर्शन है, पर उन्हें पराए रूप में मतलब द्वैतरूप व अनात्मरूप में देखना असत्यदर्शन है। ऐसा नहीं कि ये सिर्फ दार्शनिक बातें हैं। यह वैज्ञानिक सत्य है। दरअसल दुनियादारी पूरी तरह झूठ पर टिकी हुई है। सूक्ष्म विचारों को झूठा स्थूल रूप दिया जाता है। आध्यात्मिक (चिदाकाश आत्मरूप) विचारों को झूठा भौतिक (आत्मा के बिल्कुल उल्टा) रूप दिया जाता है। शरीर के अंदर स्थित विचारों को झूठमूठ में शरीर के बाहर समझा जाता है। अगर हम विचारों को उनके सच्चे रूप में मानें तो दुनिया गायब और हर जगह आत्मा ही आत्मा है। बड़ी बात है कि योग करते समय बिना प्रयत्न के यह दृष्टि बनी रहती है, क्योंकि उस समय शरीर और सांस के रूप में प्राण की क्रियाशीलता के अनुसार विचारों की क्रियाशीलता भी तेजी से बदलती रहती है, जिससे इन सबके आपस में जुड़े होने का विश्वास खुद ही, अवचेतन में ही बना रहता है। मन या मस्तिष्क की बजाय शरीर इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि विभिन्न विचार अलग अलग ऊर्जा स्तर को लिए होते हैं, इसलिए शरीर के अलग अलग चक्रों पर फिट बैठते हैं। ज्यादा उर्जा वाले विचार सहस्रार की तरफ होते हैं तो कम ऊर्जा वाले मूलाधार की तरफ़। विचारों की ऊर्जा से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए, नहीं तो मस्तिष्क पर बोझ बढ़ेगा जिससे सिरदर्द भी हो सकती है। इसीलिए आदमी का असली रूप कोई मन या मस्तिष्क नहीं है, जैसा आमतौर पर समझा जाता है, पर सहस्रार चक्र से लेकर मूलाधार चक्र तक का फ्रंट चैनल दंड और उसपर स्थित चक्रों का समूह है। ऐसा समझ लो कि यह सात गांठों वाला बांस का डंडा है। जरूरी नहीं कि वे विचार चक्रों से ही चिपके हों, वे चक्रों की उंचाई के स्तर पर किसी भी लंबी दूरी तक महसूस हो सकते हैं। शायद सहस्रार के विचार आकाश की तरफ़ की सारी दूरी कवर करते हैं, और मूलाधार के विचार पाताल की ओर की सारी दूरी। जहां भी विचार महसूस होए, वहीं उनका स्वागत करना चाहिए, पर उनके असली सूक्ष्म व आध्यात्मिक रूप में, झूठे स्थूल व भौतिक रूप में नहीं। साथ में योग के दौरान विचारों को उनके सच्चे रूप में देखने से वे एकदम से गायब नहीं होते आम दुनियावी अवस्था की तरह, बल्कि आत्मा को आनन्द प्रदान करते हुए आराम से गायब होते हैं, क्योंकि योग करते समय ऊर्जा का स्तर ऊंचा होता है। साथ में सांसों के स्तंभन आदि विभिन्न तकनीकी प्रयोगों अर्थात प्रणायामों से योग के समय मन की चंचलता भी कम हो जाती है। इससे आत्मा भलीभांति तृप्त होते हुए महसूस होती है। आम अवस्था में वे आत्मा को समुचित आंनद मुहैया कराने से पहले ही गायब हो जाते हैं, क्योंकि ऊर्जा का स्तर नीचा होता है, जिससे आत्मा प्यासी सी ही बनी रहती है। अगर हम विचारों को उनके झूठे रूप में मानें तो आत्मा गायब और हर जगह दुनिया ही दुनिया है। सीधी सी बात है कि योग से विचार इतना ज्यादा स्पष्ट बनते हैं, जितने आम भौतिक दुनियादारी की हालत में भी नहीं बनते। इससे उनका सच्चा सूक्ष्म स्वरूप अपनेआप सामने आ जाता है। मतलब कुंडलिनी योग ही सबसे बड़े झूठ का सबसे बड़ा पर्दाफाश करता है। वैसे भी आत्मा को उजागर होने के लिए इसी पर्दाफाश से बल मिलता है। अगर झूठ नहीं होगा, तो पर्दाफाश भी नहीं होगा। इसका मतलब यह है कि झूठ और उसका पर्दाफाश साथसाथ चलता रहना चाहिए। मतलब कि भौतकवाद और अध्यात्मवाद संतुलित रूप में साथसाथ चलते रहने चाहिए। संतुलित का मतलब यह है कि इतनी भौतिकता भी नहीं होनी चाहिए कि आदमी की जान पर ही बन आए या जीवनदायिनी धरती ही नष्ट होने लगे। पशु में झूठ भी कम होता है, इसलिए उसके पर्दाफाश की संभावना भी कम होती है, जिससे उसका आत्मविकास भी बहुत कम या धीमा होता है। इसी सबसे बड़े झूठ को अध्यात्म की भाषा में अज्ञान कहते हैं, और इसके पर्दाफाश को ज्ञान। जो अध्यात्म के साथ दुनियादारी जोड़ते हुए पैसे ऐंठने की कोशिश करे तो उनसे सावधान, क्योंकि जिस समय वे पैसे वाले दुनियावी मोड में होते हैं, उस समय आध्यात्मिक मोड नहीं रहता। योगी व लेखक श्री ओम स्वामी का कहना ठीक है कि योगी आर्थिक रूप से स्वावलंबी तो होना ही चाहिए, साथ में उद्योगपति भी होना चाहिए जो समाज को भी आर्थिक सहारा दे सके। वह भी क्या योगी जो अपने लिए भी मांगता फिरे।

मुझे तो लगता है कि शुरुआती कुछ साधना ही समूह आदि में ज्यादा अच्छी तरह से कर सकते हैं, संभवतः ज्यादातर मामलों में बाद की उच्च अवस्था की साधना तो एकांत में ही फलीभूत होती है, भीड़ में नहीं। वैसे भी भीड़ में करने योग्य साधना कर्मयोग ही होता है, नाक पकड़कर योग करना नहीं। चलो, कोई बात नहीं, जमाने के साथ बहते चलो। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं। जिसको अच्छा व अपने लिए उपयुक्त लगे, वह करे। यह प्रचार उनके लिए है जो इसके हकदार हैं, पर संकोच आदि विभिन्न वजहों से इसकी आदत न डाल पा रहे हों। किसी फिल्म के प्रचार का यह मतलब नहीं होता कि उसे सब देख लें, पर यह कि जिज्ञासु और जरूरतमंद आदमी तक उसकी पहुंच बन पाए। वेलेंटाइन डे का ये मतलब नहीं कि इस दिन सभी लोग जोड़ा बनाकर आपस में प्यार करने लग जाएं, पर यह कि जिसको इसकी

जरूरत और गुंजाईश लगती है, पर संकोच आदि से न कर पा रहा हो, उसे करने का मौका मिले। सभी को विश्व योग दिवस सप्ताह की हार्दिक शुभकामनाएं।

अध्याय-4
कुण्डलिनी योग ही भगवान विष्णु के वराह अवतार के रूपक के रूप में वर्णित किया गया है

दोस्तों, मैं एक पोस्ट में नाक व इड़ापिंगला से जुड़े कुछ आध्यात्मिक रहस्य साझा कर रहा था। इसी से जुड़ी एक पौराणिक कथा का स्मरण हो आया तो सोचा कि इस पोस्ट में उसका योग आधारित रहस्योद्घाटन करने की कोशिश करते हैं। कहते हैं कि पुराने युग में राक्षस हिरण्याक्ष धरती को चुरा के ले गया था और उसे समुद्र के अंदर गहराई में छिपा दिया था। इससे सभी देवता परेशान होकर ब्रह्मा को साथ लेकर भगवान विष्णु के पास गए और उनसे सहायता का वचन प्राप्त किया। तभी ब्रह्मा की नाक से एक छोटा सा सूअर निकला। दरअसल भगवान विष्णु ने ही उस वराह का रूप धारण किया हुआ था। वह देखते ही देखते बड़ा होकर समुद्र में घुस गया। वहाँ उसने गहराई में छुपे दैत्य हिरण्याक्ष को देख लिया और उससे युद्ध करने लगा। देखते ही देखते उसने हिरण्याक्ष को मार दिया और वेदों समेत धरती को अपने मुंह के दोनों किनारों वाली लंबी और पैनी दो दाढ़ें आगे करके उन पर गोल धरती को बराबर संतुलित करके टिका दिया। फिर वे समुद्र के ऊपर आए और उन्होंने धरती को यथास्थान स्थापित कर दिया। फिर भी वराह भगवान शांत नहीं हो रहे थे। उनको भगवान शिव ने एक अवतार लेकर शांत किया।

वराह अवतार कथा का योग आधारित रहस्यात्मक विश्लेषण

नासिका पर और विशेषकर नासिका से अंदरबाहर आतीजाती साँस पर ध्यान देने से शक्ति केंद्रीय रेखा में सुषुम्ना नाड़ी की सीध में आ जाती है। कहते हैं कि नासिका से बाहर जाती साँस से होकर ही वराह बाहर निकला। बाहर जाती साँस पर ध्यान देने से शक्ति आगे वाले चैनल से नीचे उतरती है, और सभी चक्रौं को भेदते हुए मूलाधार में पहुंच जाती है। यही वराह का समुद्र के नीचे पाताल लोक में पहुंचना है। अगर उसे पाताल लोक की बजाय समुद्र ही मानें तो भी संसार सागर का सबसे निचला पायदान मूलाधार ही है, क्योंकि विभिन्न चक्रौं में ही सारा संसार बसा हुआ है। सम्भवतः इसलिए भी समुद्र कहा गया हो क्योंकि वीर्यरूपी जल के भंडार मूलाधार क्षेत्र के अंतर्गत ही आते हैं, जिसमें सारा संसार के रूप में दबा सा पड़ा होता है। हिरण्याक्ष का मतलब द्वैतभाव रूपी अज्ञान। हिरण्य मतलब सोना, अक्ष मतलब आंख। जिसकी नजर में सुवर्ण अर्थात समृद्धि के प्रति आदरभाव है, और उसके पीछे द्वैत भाव से अंधा सा होकर पड़ा हुआ है, वही हिरण्याक्ष है। उससे कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार के अँधेरे में छुप अर्थात सो जाती है। मतलब जो मन के विचारों की शक्ति है, वह अवचेतन विचारों के रूप में अव्यक्त होकर मूलाधार में दब जैसी जाती है। यही तो कुंडलिनी है। उस मानसिक संसार के साथ वेद भी मूलाधार में दब जाते हैं, क्योंकि शुद्ध व सत्त्वगुणी आचार-विचार ही तो वेदों के रूप में हैं। शक्ति मूलाधार पर पहुँचने के बाद पीठ से होते हुए वापिस ऊपर मुड़ने लगती है। शक्ति इड़ा और पिंगला, ज्यादातर इड़ा नाड़ी से ऊपर चढ़ने की कोशिश करती है, क्योंकि इसमें अवरोध कम होता है। कई बार शक्ति इड़ा और पिंगला में कुछ क्षणों के लिए प्रत्येक में बारीबारी से झूलने लगती है। ऐसे में आज्ञा चक्र पर भी ध्यान बनाकर रखने से शक्ति बीचबीच में कुछ क्षणों के लिए सुषुम्ना में भी ठहरती रहती है। इड़ा और पिंगला ही वराह के मुंह के दोनों किनारों वाले दो नुकीले दाँत हैं। सुषुम्ना नाड़ी या आज्ञा चक्र ही उन दोनों दांतों के ऊपर संतुलित करके रखी हुई गोल पृथ्वी है। चक्र भी गोल ही होता है। सुषुम्ना को पृथ्वी इसलिए कहा गया है क्योंकि दुनिया के सारे अनुभव मस्तिष्क में ही होते हैं, बाहर कहीं नहीं, और सुषुम्ना नाड़ी से होकर ही मस्तिष्क को शक्ति संप्रेषित होती है। वराह कुण्डलिनी-पुरुष अर्थात ध्यान-छवि है। यह भगवान विष्णु का ध्यान ही है। उसको भी विष्णु की तरह ही शंख, चक्र, गदा, पद्म के साथ चतुर्भुज रूप में दिखाया गया है।इसीलिए कहा है कि भगवान विष्णु ने वराह रूप में अवतार लिया। रूपक के लिए वराह को इसलिए भी चुना गया है क्योंकि सूअर ही जमीन को खोदकर गहराई में भोजन के रूप में छिपी अपनी शक्ति की तलाश करता रहता है। सूअर को पृथ्वी इसीलिए प्यारी होती है। इसीलिए उसे लाने वह समुद्र में भी घुस जाता है। मूलाधार में सोई हुई या दबी हुई धरती अर्थात मन रूपी शक्ति को पाने के लिए वह इड़ा और पिंगला रूपी दांतों के साथ उस शक्ति को वहाँ पर टटोलता और खोदता है। फिर उसको सुषुम्ना रूपी संतुलन देकर जल के बाहर ले आता है, और उसे अपने पूर्ववत असली स्थान पर स्थापित कर देता है। जल से बाहर ले आता है माने नाड़ी के शिखर पर उससे बाहर सहस्रार में पहुंचा देता है, क्योंकि नाड़ी भी जल की तरह ही बहती है। उसका असली स्थान मस्तिष्क का सहस्रार ही है, क्योंकि वही सभी अनुभवों का केंद्र है। सुषुम्ना नाड़ी भी सीधी मूलाधार से सहस्रार को जाती है। इससे अवचेतन मन में दबे हुए विचार फिर से अनुभव में आने लगते हैं, और आनंदमयी शून्य-आत्मा में विलीन होने लगते हैं। मतलब अवचेतन विचारों के रूप में सोई हुई शक्ति जागने लगती है। यह विपासना ही तो है। विपासना मस्तिष्क के किसी भी हिस्से में हो सकती है, सहस्रार को छोड़कर, क्योंकि इसके लिए कम शक्ति

चाहिए होती है। होती सहस्रार में ही है, पर कम ऊर्जा के कारण बाहर जान पड़ती है। जिस विचार में जितनी कम शक्ति होती है, वह सहस्रार से उतना ही दूर प्रतीत होता है। वैसे भी आत्मा का स्थान सहस्रार में ही बताया गया है। सहस्रार में केवल कुण्डलिनी चित्र का ही ध्यान किया जाता है, जोकि किसी मूर्ति या गुरु या पारलौकिक देह आदि के रूप में होता है। यह चित्र लगभग असली भौतिक रूप की तरह महसूस होता है अभ्यास से, इसीलिए इसके लिए विपासना की अपेक्षा काफी ज्यादा शक्ति लगती है। यदि कोई किसी आम लौकिक आदमी या औरत के रूप की छवि को सहस्रार में जागृत करने लगे, तब तो वह रात को ही नींद में चलता हुआ उसके पास पहुंच जाएगा। तब ध्यान कैसे होगा। फिर सभी देवता और ऋषिगण प्रसन्न होकर वराह भगवान की हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं। वैसे भी इन सभी का उद्देष्य जीवमात्र को जन्ममरण रूपी दुःख से दूर करना ही है, जो सहस्रार चक्र में ही संभव है, इसीलिए खुश होते हैं। शिवजी के द्वारा वराह को शांत करने या मारने का मतलब है कि योगी कुण्डलिनी का भी मोह छोड़कर शिव के जैसा अद्वैतवान तांत्रिक बन गया। वैसे भी सिद्धांत यही है कि ज्ञान अर्थात कुण्डलिनी जागरण होने के बाद या वैसे भी अद्वैतमय तंत्र ही सर्वोच्च समझ अर्थात सुप्रीम अंडरस्टेंडिंग है, जिसे ओशो महाराज भी अपनी एक पुस्तक 'tantra- a supreme understanding' के रूप में दुनिया के सामने स्पष्ट करते हैं।

अध्याय-5
कुण्डलिनी ध्यान योग में विपासना अर्थात साक्षीभाव साधना का अत्यधिक महत्त्व है

विपासना साधना के लिए अति उपयोगी प्राणायाम कपालभाति

एक पोस्ट में मैं विपासना के बारे में भी बता रहा था। मेरे अनुभव के अनुसार कपालभाति प्राणायाम भी विपासना में बहुत मदद करता है। सिर्फ सांस को बाहर ही धकेलना है। अंदर जैसी जाती हो, जाने दो। अपने को थकान न होने दो। तनावरहित बने रहो। जो रंगबिरंगे विचार उमड़ रहे हों, उन्हें उमड़ने दो। जो पुरानी यादें आ रही हों, उन्हें आने दो। वे खुद शून्य आत्मा में विलीन होती जाएंगी। दरअसल ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि मस्तिष्क में बिना किसी भौतिक वस्तुओं की सहायता के उनके प्रकट होने से आदमी को यह पता चल जाता है कि वे असत्य व आकाश की तरह सूक्ष्म हैं, पर भौतिक संसार के सम्पर्क में आने से भ्रम से सत्य व स्थूल जान पड़ते हैं। विपासना का सिद्धांत भी यही है। इसीलिए शास्त्रों में बारबार यही कहा गया है कि संसार असत्य है। सम्भवतः यह विपासना के लिए लिखा गया है, क्योंकि जब विपासना से संसार असत्य जान पड़ता है, तब संसार को असत्य जान लेने से विपासना खुद ही हो जाएगी। कपालभाति प्राणायाम से इसलिए विपश्यना ज्यादा होती है, क्योंकि व्यस्त दैनिक व्यवहार में भी हम ऐसे ही तेजी से और झटकों से सांस लेते हैं। जैसे ही कोई विचार आता है, ऐसा लगता है कि सांस के लिए भूख बढ़ गई, और अंदर जाने वाली सांस भी गहरी, मीठी, स्वाद व तृप्त करने वाली लगती है। अगर विचार को बलपूर्वक न दबाओ, तो इससे आगे से आगे जुड़ने से विचारों की श्रृंखला बन जाती है, और लगभग सारा ही मन घड़े से बाहर आ जाता है, जिसे पौराणिक कथा में कहा गया है कि एक घड़े से सैंकड़ो या हजारों पुत्रों ने जन्म लिया। जो विचार-चित्र पहले से ही हल्का जमा हो, वह कम उभरता है। मतलब साफ है कि आसक्ति भरे व्यवहार से ही मन में कचरा जमा होता है। उसको विपासना से बारबार बाहर निकालना मतलब कचरा साफ करना। जैसे कढ़ाई में पक्के जमे मैल को बारबार धोकर बाहर निकलना पड़ता है, वैसे ही आसक्ति वाले विचार को बारबार निकालना पड़ता है।

आदमी को घूमक्कड़ की तरह रहना चाहिए, क्योंकि विपश्यना साधना नए-नए स्थानों व व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से मजबूत होती है

एक बार एक पाठशाला में आयोजित हो रहे रंगारंग कार्यक्रम को देखते हुए मेरे मन में नए-पुराने विचार साक्षीभाव व आनंद के साथ उमड़ रहे थे, और आत्मा में विलीन हो रहे थे। मतलब विपश्यना साधना खुद ही हो रही थी। दरअसल वह क्षेत्र मेरे लिए खुद ही विपश्यना क्षेत्र बना था। ऐसा होता है जब किसी स्थान के साथ एक पुराना व अज्ञात सा संबंध जुड़ता है, जो अपने गृहक्षेत्र से मिलता जुलता तो है, पर वहाँ के लोग नए आदमी को अजनबी व बाहरी सा समझ कर उसके प्रति तटस्थ से रहते हैं। विरोध तो नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें भी नए व्यक्ति से अपनापन सा लगता है। इससे आदमी की शक्ति खुद ही दुappearing व रिश्तों के फालतू झमेलों से बची रहकर विपश्यना में खर्च होती रहती है। हमारे गाँव के जो देवता हैं, वे हमारे पुराने राजा हुआ करते थे। वे एकप्रकार से हमारे पूर्वज भी थे। उनके साथ हमारे पूर्वज पुरानी रियासत से नई रियासत को आए थे। नई रियासत में उन्होंने अपना घर उस जगह पर बनवाया, जहाँ से उन्हें अपनी पुरानी रियासत वाली पहाड़ी सीधे और हर समय नजर आती थी। अपने घर के ज्यादातर द्वार और खिड़कियां भी उन्होंने उसी पहाड़ी की दिशा में बनवाए थे। उनकी मृत्यु के बाद जब वहाँ उनका मंदिर बनवाया गया, तब भी उसका द्वार उसी दिशा में रखा गया। इसी तरह मेरी दादी माँ बताया करती थीं कि एक वैरागी साधु बाबा उनके गाँव में रहते थे, जो उन्हें बेटी की तरह प्यार देते थे। दादी का गाँव एक ऊँचे पहाड़ के शिखर के पास ही था। वह पहाड़ बहुत ऊँचा था, और आसपास के पहाड़ उसके सामने कहीं नहीं ठहरते थे। उस पहाड़ के शिखर पर आने का उनका मुख्य मकसद था, नीचाई पर बसे उनके अपने पुराने गांव का लगातार नजर में बने रहना, ताकि अच्छे से साधना हो पाती, और पुराने घर की याद विपासना के साथ बनी रहती अर्थात वह याद उनकी साधना में विघ्न न डालकर लाभ ही पहुंचाती। वास्तव में, दुर्भाग्य से, धीरे-धीरे उनके परिवार के सभी सदस्य विभिन्न आपदाओं से कालकवलित हो गए थे। इस वजह से ढेर सारी दौलत भी मौत की भेंट चढ़ गई थी। इससे वे संसार के मोह से बिल्कुल विरक्त हो गए थे। व्यक्तिगत संबंध के मामले में भी यही आध्यात्मिक मनोविज्ञान काम करता है। किसी व्यक्ति के प्रति आकर्षण हो पर यदि वह बाहरी व विदेशी समझ कर प्यार करने वाले को ठुकरा दे तो विपश्यना खुद ही होती रहती है। मुझे बताते हुए कोई संकोच नहीं कि इस दूसरे किस्म की व्यक्तिगत संबंध की विपशयन से मेरी नींद में जागृति में बहुत बड़ा हाथ था।

हिंदु शास्त्रीय कथाएं एकसाथ दो अर्थ लिए होती हैं, भौतिक रूप में प्रकृति संरक्षक व आध्यात्मिक रूप में मनोवैज्ञानिक

हम इस पर भी बात रहे रहे थे कि इन कथाओं को पढ़ने का पूरा मजा तब आता है जब इनके पहेली जैसे रूप के साथ असली मनोवैज्ञानिक अर्थ भी समझ में आता है। कोई यह कह सकता है कि इन कथाओं से अंधविश्वास बढ़ता है। पर इनको मानने वालों ने इनके असली या भौतिक रूप पर ज्यादा अमल नहीं किया, इन पर अटूट श्रद्धा करके इनकी दिव्यता और पारलौकिकता को बनाए रखा। इनको पवित्र व पारलौकिक कथाओं की तरह समझा, लौकिक और भौतिक नहीं। वैसे ये कथाएं ज्यादा अमानवीय भी नहीं हैं। गंगा नदी को पूजने को ही कहा है, उसे गंदा करने को तो नहीं। इससे प्रकृति के प्रति प्रेम जागता है। वैसे भी नाड़ी विशेषकर सुषुम्ना नाड़ी नदी की तरह बहती है। नदी के ध्यान से संभव है कि नाड़ी की तरफ खुद ही ध्यान चला जाए। मतलब जो भी कथाएं हैं, दोनों प्रकार से फायदा ही करती हैं, भौतिक रूप से प्रकृति का संरक्षण करती हैं, और आध्यात्मिक रूपक के रूप में आध्यात्मिक उत्थान करती हैं। कुछ गिनेचुने मामले में मानवता के अहित में प्रतीत भी हो सकती हैं, जैसे कि मनु स्मृति के कुछ वाक्यों पर आरोप लगाया जाता है। पर आरोप के जवाब में ज्यादातर उनका आध्यात्मिक या पारलौकिक अर्थ ही लगाया जाता है, भौतिक नहीं। हमने तो अपने जीवन में उनके अनुसार चलते हुए कोई देखा नहीं, सिर्फ उन पर आरोप ही लगते देखे हैं। बहुत सम्भव है कि वे वाक्य मूल ग्रंथ में नहीं थे और बाद में उनको साजिश के तहत जोड़ दिया गया हो। इसके विपरीत कुछ अन्य धर्मों में मुझे अधिकांश लोग वैसी रहस्यात्मक कथाओं पर हूबहू चलते दिखाई देते हैं, उनके विकृत जैसे भौतिक रूप में। यहाँ तक कि वे उन कथाओं के आध्यात्मिक विश्लेषण व रहस्योद्घाटन की इजाजत भी नहीं देते, और जबरदस्ती ऐसा करने वालों को जरा भी नहीं बख्शते। जेहाद, काफीरों की अकारण हत्या, जबरन धर्मान्तिरण जैसे उदाहरण आज सबके सामने हैं। हमने एक पोस्ट लिखी थी, जिसमें होली स्पिरिट व कुंडलिनी के बीच में समानता को प्रदर्शित किया गया था। दो-चार लोग किसी भी वैज्ञानिक तर्क को नकारते हुए उस पोस्ट को नकारने लगे। एक जेंटलमेन तो उसे शैतान व डेमन या शत्रु की कारगुजारी बताने लगे। वे इस बात को नहीं समझ रहे थे कि वह विभिन्न धर्मों के बीच मैत्री व समानता पैदा करने का प्रयास था। वे इस वैबसाईट में दर्शाए तंत्र को ओकल्ट या भूतिया प्रेक्टिस समझ रहे थे। हमें किसी भी विषय में पूर्वाग्रह न रखकर ओपन माइंडड होना चाहिए। हिंदु दर्शन में अन्य की अपेक्षा विज्ञानवादी सोच व तर्कशीलता को ज्यादा महत्त्व दिया गया है, और जबरदस्ती अंधविश्वास को बनाए रखने को कम, जहाँ तक मैं समझता हूँ। वैसे कुछ न कुछ कमियाँ तो हर जगह ही पाई जाती हैं। साथ में वे महोदय मुझे कहते हैं कि मैं किसी धर्म वगैरह से अपनी पहचान बना कर रखता हूँ। मैं जब हिंदु हूँ तो अपने हिंदु धर्म से पहचान बना कर क्यों नहीं रखूंगा। सभी धर्मों में अपनी विशिष्टताएं हैं। विभिन्न धर्मों से दुनिया विविध रंगों से भरी व सुंदर लगती है, हालांकि उनमें अवश्यँभावी रूप से अनुस्यूत मानव धर्म सबके लिए एकसमान ही है। पर फिर भी मैं अपने स्वतंत्र विचार रखता हूँ, और जो मुझे गलत या अंधविश्वास लगता है, उसे मैं नहीं भी मानता। मेरी लगभग हरेक पोस्ट में किसी न किसी हिंदु मान्यता का वैज्ञानिक व मानवीय स्पष्टीकरण होता है। मेरे धर्म की उदार और सर्वधर्मसमभाव वाली सोच का भला इससे बड़ा सीधा प्रमाण क्या होगा। एकबार हिंदी भाषा पढ़ाने वाले एक विद्वान व दार्शनिक अध्यापक से व्हट्सएप्प पर मेरी मुलाक़ात हुई थी। मैंने उन्हें बताया कि कैसे पाश्चात्य लोग योग में यहाँ के स्थानीय हिंदु लोगों से ज्यादा रुचि ले रहे हैं। तो उन्होंने लिखा कि उनमें संस्कार नहीं होते। संस्कार मतलब पीढ़ियों से चली आ रही सांस्कृतिक परम्परा। अब मुझे उनकी वह बात समझ आ रही है कि कैसे संस्कारों की कमी से आदमी एकदम से उस परम्परा के खिलाफ जा सकता है, जिसको वह जीजान से मान रहा हो। संस्कार आदमी को परम्परा से जोड़ कर रखते हैं।

अध्याय-6

कुंडलिनी ऊर्जा इड़ा और पिंगला नाड़ियों से पकड़ में आने के बाद ही सुषुम्ना में आसानी से प्रविष्ट हो पाती है

मित्रों, मैं एक पोस्ट में बता रहा था कि गंगा नदी का अवतरण कैसे हुआ। राजा सगर के साठ हजार पुत्र हजारों वासनाओं के प्रतीक हैं। सगर का मतलब संसार सागर मतलब शरीर में डूबा हुआ आदमी। हरेक जीवात्मा अपने शरीर रूपी संसार का राजा ही है। सारा संसार इस शरीर में ही है। सागर शब्द से ही सगर शब्द बना है। कहते हैं कि राजा सगर की पत्नि के गर्भ से एक घड़े जैसी आकृति पैदा हुई थी। उसमें चींटियों की तरह साठ हजार बच्चे थे। वे बाहर निकलकर बढ़ते गए और कालांतर में साठ हजार पूर्ण मनुष्य बन गए। मस्तिष्क भी तो घड़े जैसा ही है, जिसमें बहुत सूक्ष्म वासनाएं हजारों की संख्या में रहती हैं। इन्द्रियों के माध्यम से वे बाहर निकलकर चित्रविचित्र अनेकों रचनाओं व भावनाओं का निर्माण करती हैं, मतलब पूर्ण विकसित मनुष्य की तरह हो जाती हैं। मनुष्य क्या है, भावनामय रूप की एक विशेष अवस्था ही तो है। अनगिनत अवस्थाएं मतलब अनगिनत मनुष्य। महारानी गांधारी से भी इसी तरह सौ कौरव पुत्रों का जन्म हुआ था। हो सकता है कि इसके पीछे भी ऐसा ही कोई रहस्य छुपा हो। प्राइमरी स्कूल की शुरुआती कक्षाओं के दिनों की बात है। एक हिंदी कविता थी, 'कौरव सौ थे पांडव पांच, सगे भाइयों की संतान; पांडव वीर धरम के रक्षक, कौरव को था धन अभिमान'। मैं कक्षा के सभी बच्चों को समझाने की कोशिश करता कि किसी के सौ पुत्र होना असम्भव है, इसलिए 'सौ' की बजाय यह शब्द 'सो' है, मतलब 'जो थे सो थे', पर सभी बच्चे कहते कि गुरुजी ने 'सौ' ही कहा है। मैं उन्हें कहता कि उनसे सुनने में गल्ती हुई है। जब मैंने अपने तरीके से अध्यापक के बोलने पर कविता पढ़ी, तब उन्होंने मुझे सही किया। मुझे आश्चर्य हुआ पर उन्होंने उसकी वैज्ञानिक वजह नहीं बताई, और न ही मैंने पूछने की हिम्मत की। इतना गहरा विश्वास होता था ऐसी कथाओं पर, हालांकि ऐसा नहीं था कि कोई उसकी देखादेखी असल में भी सौ पुत्र पैदा करने की कोशिश करने लग जाता। हालांकि ऐसी कथाओं का जनसंख्या बढ़ाने में योगदान हो भी सकता है। ऐसी कथाओं में मानसिक छवियों को पुत्र रूप में दर्शाने का प्रचलन रहा है शास्त्रों में। यह अध्यात्मविज्ञान की दृष्टि से सही भी है क्योंकि जिस वीर्य से पुत्र की प्राप्ति होती है वही एक ऊर्जावान या जागृत विचार भी उत्पन्न कर सकता है। हो सकता है कि यदि हम उनके रहस्य समझ जाते, तो वे हमारे मन में वह मनोवैज्ञानिक सस्पेंस बना के न रखतीं, जो आदमी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहता है।

प्रभावी व स्पष्ट नाक की तरह नासिका-दृष्टि का आध्यात्मिकता से भरा मनोवैज्ञानिक लाभ

दूसरा हम यह मुद्दा उठा रहे थे कि मूलाधार की शक्ति कैसे अवचेतन मन के कचरे को जलाती रहती है। नाक पर ध्यान बनाते ही किसी भी तनाव व थकान वाले स्थान पर एकदम से शांति मिलती है और अद्वैत के जैसा आनंद अनुभव होता है। मन में साक्षीभाव के साथ दृश्य उभरने लगते हैं, जिससे ऐसा लगता है कि मन का कचरा साफ हो रहा है। सांसों में सुधार होने लगता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इससे ऊर्जा चैनल केंद्रीय रेखा में सक्रिय हो जाता है, जिसमें स्वाधिष्ठान व मूलाधार से शक्ति पीठ के रास्ते से ऊपर चढ़कर गोल लूप में प्रवाहित होने लगती है। एकदिन मैं एक निमंत्रण पर निकट की पाठशाला में वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह देखने गया। वहाँ बच्चे बहुत अच्छा रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे। उस दौरान यह सब मनोवैज्ञानिक लाभ मुझे बीचबीच में अपनी नाक के ऊपर नीचे की तरफ तिरछी नजर बना कर महसूस हुआ। साथ में नाक के अंदर स्पर्ष करती हवा पर भी ध्यान लगा रहा था। नाई से ताज़ा-ताज़ा शेव करवाई थी और फेस स्क्रब करवाया था, जिससे मूँछ बड़ी और स्पष्ट महसूस हो रही थी। सम्भवतः वह भी नाक की तरफ ध्यान खींच रही थी। हो सकता है कि मूंछ का प्रचलन इसी आध्यात्मिक लाभ के दृष्टिगत बना हो। लगता है कि बड़ी नाक वाले आदमी की आकर्षकता और सेक्सी लुक के पीछे यही बड़ी नाक और उससे उत्पन्न उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक लाभ है। वैसे भी नाक की तरफ ध्यान देता आदमी सुंदर, अंतरमुखी, आध्यात्मिक और अपने आप में संतुष्ट लगता है। सम्भवतः इसीलिए नाक के ऊपर बहुत सी कहावतें बनी हैं, जैसे कि नाक पे दिया जलाना, अपने नाक की परवाह कर, अपनी नाक को ऊँचा रखो, अपनी नाक को बचा, नाक न कटने दे, अपनी नाक मेरे काम में न घुसा आदि-आदि। मुझे यह भी लगता है कि दूरदर्शन को दीवार पर आँखों की सीध में या उससे भी थोड़ा नीचे फिक्स करवाने से जो उसे देखने का ज्यादा मजा आता है, वह इसीलिए क्योंकि उसको देखते समय नाक पर भी नजर बनी रहती है, इससे ज्यादा ऊँचाई पर ऐसा कम होता या नहीं होता और साथ में गर्दन में भी दर्द आती है। कुछ एकसपर्ट तो यहाँ तक कहते हैं कि दूरदर्शन का ऊपरी किनारा आँखों की सीध में होना चाहिए, जैसे कम्प्यूटर मॉनिटर का होता है। साथ में मुझे नींद का मानसिक उच्चारण करने से भी शांति जैसी मिलती थी। नींद के मन में उच्चारण से सांस विशेषकर बाहर निकलती सांस ज्यादा चलती है, इससे सिद्ध होता है कि ऊर्जा एक्सहेलेशन माने निःश्वास से

आगे के चैनल से नीचे उतरती है। प्राणायाम करते समय नाक को पकड़ते हुए उसी हाथ की एक अंगुली की टिप से आज्ञा चक्र बिंदु पर संवेदनात्मक दबाव बना कर रखने से भी मुझे शक्ति केंद्रीभूत माने सेन्ट्रलाईज़ड होते हुए महसूस होती है। मुझे तो आज्ञा चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र को एकसाथ अंगुली से दबा कर रखने से अपना शरीर एकदम से शक्ति से रिचार्ज होता हुआ महसूस होता है। लगती यह तांत्रिक तकनीक अजीब है, पर बड़े काम की है। साँस अपनी मर्जी से चलने-रुकने दो, शक्ति को अपनी मर्जी से इड़ा या पिंगला या जहाँ मर्जी दौड़ने दो। अंततः वह खुद ही केंद्रीय सुषुम्ना चैनल में आ जाएगी, क्योंकि उसके दो कॉर्नर पॉइंट ऊँगली से जो दबाए हुए हैं, जिनसे पैदा हुई दाब की आनंदमयी सी संवेदना शक्ति को खुद ही सुषुम्ना में धकेल कर गोलगोल घुमाने लगती है। इससे शरीर के उस हिस्से तक पर्याप्त शक्ति आसानी से पहुंच जाती है, जहाँ उसकी जरूरत हो। जैसे थके हुए दिल तक, बेशक यह उपले शरीर के बाएं हिस्से में है। इसी तरह थकी हुई टांगों में। दरअसल ऊर्जा नाड़ी के उन दो कॉर्नर पॉइंट के बीच में चलती है, बीच रास्ते में वह कोई भी रास्ता अख्तियार कर सकती है। पसंदीदा रास्ता वही होता है, जिसमें कम अवरोध होता है। स्वाभाविक है कि शक्ति की कमी वाला रास्ता ही कम प्रतिरोध वाला होगा, क्योंकि वह शक्ति को अपनी ओर ज्यादा आकर्षित करेगा, और अपनी शक्ति को पूरा करने के बाद आगे भी जाने देगा। कई बार योगासन करते समय जब सांस रोकने से मस्तिष्क में दबाव ज्यादा बढ़ा लगता है, तब आज्ञा चक्र वाला बिंदु नहीं दबाता, सिर्फ नाक पर हल्का सा अवलोकन बना रहता है। उससे मस्तिष्क का दबाव एकदम से कम होकर निचले चक्रौं की तरफ चला जाता है। दरअसल सुषुम्ना सीधे वश में नहीं आती। उसे इड़ा और पिंगला से काबू करके वहां से सुषुम्ना में धकेलना पड़ता है। इसीलिए आपने देखा होगा कि कई लोग माथे पर ऊर्ध्वत्रिपुण्ड लगाते हैं। इसमें दोनों किनारे वाली रेखाएं क्रमशः इड़ा और पिंगला को दर्शाती हैं, और बीच वाली रेखा सुषुम्ना को। यह ऐसे ही है जैसे बच्चा सीधा पढ़ने नहीं बैठता, पर थोड़ा खेल लेने के बाद पढ़ाई शुरु करता है। हालांकि सुषुम्ना में शक्ति ज्यादा समय नहीं रहती, कुछ क्षणों के लिए ही टिकती है। वैसे तो इड़ा और पिंगला में भी थोड़े समय ही महसूस होती है, पर सुषुम्ना से तो ज्यादा समय ही रहती है। ऐसे ही जैसे बच्चा पढ़ाई कम समय के लिए करता है, और खेलकूद ज्यादा समय के लिए। और तो और, एकदिन मैं दूरदर्शन पर किसी हिंदु संगठन के कुछ युवाओं को देख रहा था। उनके माथे पर लम्बे-लम्बे तिलक लगे हुए थे। किसी की पतली लकीर तो किसी की चौड़ी। एक सबसे चौड़ी, लंबी और चमकीली तिलक की लकीर से मेरी शक्ति बड़े अच्छे से सुषुम्ना में घूम रही थी, और मैं बड़ा सुकून महसूस कर रहा था। मैं बारबार उस तिलक को देखकर लाभ उठा रहा था। बेशक वह इतना बड़ा तिलक ऑड जैसा और हास्यास्पद सा लग रहा था। उसकी आँखों और चालढाल में भी व्यावहारिक अध्यात्म व अद्वैत नजर आ रहा था। दूसरे तिलकों से भी शक्ति मिल रही थी, पर उतनी नहीं। उनके चेहरों पर अध्यात्म का तेज भी उतना ज्यादा नहीं था। असली जीवन में तो तिलक लगाने वाले को भी अप्रत्यक्ष रूप से कुंडलिनी लाभ मिलता है, जब दूसरे लोग उसके तिलक की तरफ देखते हैं। इसका मतलब है कि सत्संग की शक्ति दूरदर्शन के माध्यम से भी मिल सकती है। गजब का आध्यात्मिक विज्ञान है यारो।

कुंडलिनी योग को ही गंगा अवतरण की कथा के रूप में दिखाया गया है

अश्वमेध यज्ञ साक्षीपन साधना या विपासना का अलंकारिक शैली में लिखा रूप प्रतीत होता है

दोस्तों, हिन्दु दर्शन में गंगा के अवतरण की एक प्रसिद्ध कथा आती है। क्या हुआ कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। एक बार वे अश्वमेध यज्ञ करने लगे। यज्ञ के अंत में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। देवराज को डर लगा कि अगर राजा सगर का वह सौवां अश्वमेध यज्ञ सफल हो गया तो सगर को उसका इंद्र का पद मिल जाएगा। इसलिए उसने घोड़े को चुराकर पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम के बाहर बाँध दिया। सगरपुत्रों ने समझा कि घोड़े को कपिल मुनि ने चुराया था। इसलिए वे उन्हें अपशब्द कहने लगे। इससे जब कपिल मुनि ने आँखें खोलीं तो वे उनसे निकले तेज से खुद ही भस्म हो गए। फिर इससे दुखी होकर राजा सगर कपिल मुनि से क्षमा मांगने लगे और अपने पुत्रों के उद्धार का उपाय पूछने लगे। फिर उन्होंने गंगा नदी से उनका उद्धार होने की बात कही। फिर इतना बड़ा काम कोई नहीं कर सका। सगर के बाद की कई पीढ़ियों के बाद जन्मे भागीरथ ने ब्रह्मा से वरदान में माँ गंगा को माँगा और शिव से उसे जटा में धारण करने की प्रार्थना की। उनकी इच्छा पूरी हुई और गंगा नदी ने उन भस्मित सगर पुत्रों की राख के ऊपर से गुजर कर उनका उद्धार किया।

गंगा नदी के जन्म की कथा का कुंडलिनीविज्ञान आधारित विश्लेषण

राजा सगर संसार-सागर का प्रतीक है। मतलब संसार में आसक्त आदमी। साठ हजार पुत्र हजारों इच्छाओं व भावनाओं के प्रतीक हैं। अश्वमेध यज्ञ का मतलब इन्द्रियों का दमन है। मेध का मतलब बलि या वध होता है। अश्व की बलि मतलब इन्द्रियों की बलि। अगर बाह्य इन्द्रिय रूपी अश्व की बलि अवचेतन मन रूपी हवनकुण्ड में दी जाए और उससे दबे हुए विचारों को उघाड़ने के रूप में अग्नि प्रज्वलित की जाए तो स्वाभाविक है कि उससे मुक्ति रूपी स्वर्ग मिलेगा। उस यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं क्योंकि पूरे शरीर को देवताओं ने ही बनाया है और वे ही उसे नियंत्रित करते हैं, जैसे कि आँख को सूर्य देव, भुजाओं को इंद्र आदि। इससे परमात्मा-निर्देशित देवताओं का उद्देश्य पूरा होता है, क्योंकि बारबार के जन्ममरण आदि के दुःख से जीव को मुक्ति दिलाकर उसे अपना सर्वोत्तम पद प्रदान करना ही जीवविकास के पीछे मुख्य वजह प्रतीत होती है। इस उद्देष्य की पूर्ति से देवताओं को शक्ति मिलती है। इसीलिए कहा गया है कि यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं और वर्षा आदि उचित समय पर करवाकर धनधान्य में वृद्धि करते हैं। प्रत्यक्ष लाभ यह तो होता ही है कि लोगों के बीच आपसी मनमुटाव नहीं रहता और एकदूसरे से प्रेम और सहयोग बना रहता है, जिससे सकारात्मक विकास होता है। एकबार ऐसा यज्ञ करने से काम नहीं चलता। यज्ञ पूरी उम्र भर लगातार करते रहना पड़ता है। यह अवचेतन मन बहुत गहरे और आकर्षक कुएँ की तरह है, जिससे बाहर निकला विचारों का कचरा फिर से उसमें गिरता रहता है, हालांकि फिर ऊपर ही रहता है, और बारम्बार के प्रयास से स्थायी रूप से बाहर निकल जाता है। हो सकता है कि किसी वार्षिक उत्सव की तरह साल में एक बार विचारों के कचरे को विस्तार से बाहर निकालने की जरूरत हो। उसे अश्वमेध यज्ञ कहते हों। इसीलिए सौ साल की पूरी उम्र में सौ यज्ञ हुए। सौवां यज्ञ न होने से जीवन के अंतिम वर्ष में पैदा हुए विचारों और भावों का कचरा अवचेतन मन में दबा रह जाता हो, जो आदमी को मुक्त न होने देता हो। हमारी दादी माँ हमें एक दंतकथा सुनाया करती थी। एक स्वर्ग को जाने वाली रस्सी थी। उस पर सावधानी से चलते हुए लोग स्वर्ग जाया करते थे। एक बार एक बुढ़िया एक योगी को उस पर जाते हुए देख रही थी। उसने योगी को आवाज लगाई कि उसे भी साथ ले चल। योगी को उस पर दया आ गई और उसका हाथ पकड़कर उसे भी रस्सी पर चलाने लगा। पर योगी ने एक शर्त रखी कि वह पीछे मुड़कर अपने भाई-बंधुओं को उससे बिछड़ने के दुःख में रोते-बिलखते नहीं देखेगी। अगर उसने पीछे देखा तो उसका संतुलन बिगड़ जाएगा और वह वापिस धरती पर गिर जाएगी। बुढ़िया ने उसकी शर्त मान ली। पर रास्ते में उससे रहा नहीं गया, और जैसे ही उसने नीचे को देखा, वह नीचे गिर गई, पर योगी बिना उसकी तरफ देखे आगे निकल लिए। ऐसी दंतकथाओं के बहुत गहरे और ज्ञानविज्ञान से भरे अर्थ होते हैं।

मन की सफाई तो अंततः विपासना से ही होती है, जो एक शांत किस्म का ध्यानयोग है

वैसे कुंडलिनी जागरण, आत्मज्ञान वगैरह-वगैरह से मुक्ति नहीं मिलती। इनसे तो विचारों या कर्मों के दबे कचरे की सफाई में मदद भर मिलती है, अगर कोई लेना चाहे तो। अगर कोई न लेना चाहे तो अलग बात है। इसीलिए आजकल कुंडलिनी जागरण जैसे मस्तिष्क झकझोरने वाले अनुभव का ज्यादा प्रचलन व महत्त्व नहीं रह गया है, अगर सच कहूँ तो। वैसे भी आज के व्यस्त, तकनीकी और अध्ययन से भरे युग में दिमाग़ पर पहले से ही बहुत दबाव है। वह और कितना दबाव झेलेगा जागृति के नाम पर। अधिकांश लोगों को एकांत व शांति तो नसीब होना बहुत मुश्किल है। अत्यधिक मस्तिष्क दबाव से कहीं पार्किंसन, अलजाइमर जैसे लाइलाज मस्तिष्क रोग हो गए तो। पर ये मेरे नहीं कुछ अन्य योगियों के विचार हैं। दरअसल ऐसा होता नहीं अगर अपनी सहनशक्ति की सीमा के अंदर रहकर और सही ढंग से ध्यानयोग या कुंडलिनी जागरण किया जाए। ध्यान से हमेशा लाभ ही मिलता है। यह पैराग्राफ कुछ अन्य लोगों के विचारों को परखने के लिए लिख रहा हूँ। सही अर्थों में आजकल तो शांत विपश्यना अर्थात साक्षीभाव साधना का युग है। वैसे विपासना भी एक ध्यान ही है, शांत, सरल, स्वाभाविक व धीमा ध्यान। अगर भैंस खुद ठीक रस्ते पे जा रही है तो उसे डंडे क्यों मारने भाई। कचरा ही साफ करना है न, तो सीधे जाके कर लो, टेढ़ेमेढ़े रास्ते से क्यों भागना। बाहर स्थित विचारों का कचरा कभी कभार अगर दिख भी जाए तो भी वह शुद्ध ही होता है क्योंकि उससे लगाव या क्रेविंग पैदा नहीं होता। यह भी कह सकते हैं कि विपासना से आदमी शांत, तनावमुक्त और हल्का हो जाता है, जिससे खुद ही उसका मन कुंडलिनी ध्यान को करता है। उससे और कुंडलिनी जागरण से विपासना में और मदद मिलती है, बदले में विपासना से कुंडलिनी ध्यान और ज्यादा मजबूती प्राप्त करता है। इस तरह से विपासना और कुंडलिनी ध्यान साधना एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं।

ध्यानयोग या ध्यान यज्ञ ही असली यज्ञ है, और इन्द्रियों का दमन ही पशुबलि है

इन्द्रियों को शास्त्रों में घोड़े या पशु की उपमा दी जाती है। पशुपति अर्थात इन्द्रियों का पति भगवान शिव का ही एक नाम है। जैसे पशु का झुकाव आंतरिक आत्मा की बजाय बाहरी दुनिया की तरफ होता है, उसी तरह बाह्य इन्द्रियों का भी। आदमी की उम्र सौ साल होती है। उसके बाद मृत्यु मतलब स्वर्ग की प्राप्ति। स्वर्ग को जीते जी प्राप्त नहीं किया जा सकता। मुक्ति तो देवराज इंद्र के लिए भी स्वर्ग है। इसीलिए इस परम स्वर्ग की प्राप्ति को इंद्र अपना अपमान मानता है कि कोई कैसे उससे और उसके द्वारा नियंत्रित तीनों लोकों से ऊपर उठ सकता है। हालांकि देवताओं के साथ इंद्र भी आदमी की मुक्ति से बल प्राप्त करता है, पर यह अहंकार जो है न, वह अपना भला-बुरा कब देखने देता है। सौवें घोड़े को पाताल में बाँधने का अर्थ है कि इंद्र ने इन्द्रियों की शक्ति को मूलाधार के अंधकार भरे क्षेत्र में स्थापित कर दिया। शरीर इंद्र के द्वारा संचालित है। शरीर की अतिरिक्त शक्ति कुदरती तौर पर खुद ही मूलाधार को चली जाती है, इसीलिए इंद्र से इसका नाम जोड़ा गया है। इतना तो सबको पता ही है कि नाभि चक्र को चली जाती है, इसीलिए जब कोई काम और तनाव न हो तो बहुत भूख लगती है और खाना भी अच्छे से पचता है। उससे शरीर में और शक्ति बढ़ती है। वह वहाँ से स्वाधिष्ठान चक्र को उतरती है क्योंकि शक्ति की चाल की दिशा ऐसी ही है। वहाँ अगर उससे यौनता से संबंधित काम लिया गया तो वह पीठ से दुबारा ऊपर चढ़कर पूरे शरीर में आनंद के साथ फैल जाती है या बाहर निकल कर बर्बाद हो जाती है। अगर वह काम भी नहीं लिया गया तो वह मूलाधार को उतरकर वहीं पड़ी रहती है। अगर कभी थकान व तनाव देने वाला खूब काम किया जाए तो वह वहाँ से पीठ से होते हुए संबंधित थके हुए अंग तक पहुंच कर उसकी मुरम्मत करती है, नहीं तो वहीं सोई रहती है। मूलाधार में शक्ति का सोया हुआ होना इसलिए भी कहा गया होगा क्योंकि जब हम मन में नींद-नींद का लगातार उच्चारण करते हैं तो शक्ति आगे के चक्रौं से नीचे जाते हुए महसूस होती है और वापिस ऊपर नहीं चढ़ती। अगर चढ़ती है, तो एकदम से नीचे उतर जाती है। अगर शक्ति को नीचे आने में रुकावट लग रही हो, तो मस्तिष्क से गले तक तो आ ही जाती है। इसके साथ एकदम से शांति और राहत महसूस होती है, और ऐसा लगता है कि मस्तिष्क दाब और रक्तचाप एकदम से कम हुआ। हरेक चक्र में शक्ति काम करती है, पर मूलाधार में आमतौर पर नहीं, क्योंकि वह शक्ति का शयनकक्ष है। वहाँ शक्ति को जगा कर करना पड़ता है। हरेक चक्र के साथ विभिन्न अंग जुड़े हैं। वैसे तो मूलाधार के साथ भी गुदामार्ग जुड़ा है, पर वह स्वाधिष्ठान से भी जुड़ा है। मुझे लगता है कि मूलाधार वाले सभी काम स्वाधिष्ठान चक्र भी कर लेता है। जागृति का स्थान मस्तिष्क है, इसलिए स्वाभाविक है कि शक्ति मस्तिष्क से जितना ज्यादा दूर होगी, वह वहाँ उतनी ही ज्यादा सोई हुई होगी। शास्त्रों में नाभि चक्र को यज्ञ कुंड भी कहा जाता है जहाँ भोजन रूपी आहुति जलती रहती है। इसका यह मतलब नहीं कि बाहरी या भौतिक स्थूल यज्ञ की जरूरत नहीं। दरअसल बाहरी यज्ञ भीतरी कुंडलिनी यज्ञ को प्रेरित भी करता है। समारोह आदि में भौतिक हवन यज्ञ करते हुए मुझे कुंडलिनी की क्रियाशीलता महसूस होती है। हाँ इतना जरूर किया जा सकता है कि भौतिक यज्ञ के नाम पर भौतिक संसाधनों का बेवजह दुरुपयोग न हो।

शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है, पर अवचेतन मन का निवास मूलाधार और स्वाधिष्ठान पर होने के कारण वह सहस्रार से नीचे जाते हुए दिखाई गई है

मूलाधार में कपिल मुनि का आश्रम मतलब वहाँ मूलाधर चक्र का पवित्र अधिष्ठाता देवता है। उसे अपशब्द कहना मतलब मूलाधार को अपवित्र मानना। सगर का साठ हजार पुत्र उसे ढूंढने भेजना मतलब आदमी द्वारा अपनी खोई हुई शक्ति अर्थात इन्द्रिय शक्ति अर्थात कुंडलिनी शक्ति को प्राप्त करने के लिए हजारों इच्छाओं व भावनाओं को खुले छोड़ देना मतलब संसार में हर तरफ अपना डंका बजाने की कोशिश करना। शास्त्र कहते हैं कि जैसे जंगल में भटकने वाले को जल्दी रत्न मिल जाता है, उसी तरह दुनिया में भटकने वाले को जल्दी ही मूलाधार और उसमें सोई शक्ति मिल जाती है। यह बहुत बड़ी शिक्षा है, जिसके अनुसार दुनिया में भटकते हुए थकने के बाद आदमी बाह्य इन्द्रियों से ऊबकर अवचेतन मन में डूबने लगता है। पर यह तभी होता है अगर आदमी अद्वैत व अनासक्ति के साथ दुनिया में जीवनयापन कर रहा हो, नहीं तो दुनिया के लोग उसका अवचेतन मन में भी पीछा नहीं छोड़ते और उसे वहाँ से भी बाहर खींच लाते हैं और उसे ध्यानसाधना नहीं करने देते। इससे साफ है कि आम आदमी को आध्यात्मिक तरक्की के लिए अद्वैत और अनासक्ति का भाव बना के रखना बहुत ज्यादा जरूरी है। जैसे इस कथा में पाताल समुद्र से नीचे है और समुद्र से होकर ही वहाँ तक रास्ता जाता है, उसी तरह मूलाधार चक्र भी सभी दुनियावी (शास्त्रों में संसार को भी समुद्र कहा गया है) चक्रौं के नीचे है, और पाताल की तरह ही सुषुप्त लोक जैसा है। तभी तो अवचेतन कह रहे इसको। वहाँ मुनि कपिल को देखना मतलब सांख्ययोग व जैन धर्म के मूल प्रवर्तक को ध्यान रूप में देखना। जैनी मुनि भी दिगंबर अर्थात नग्न अवस्था में रहते हैं। मुनि को अपशब्द कहते हुए उन पर चोरी का इल्जाम लगाना मतलब उनको पता चलना कि इस ध्यान चित्र ने ही शक्ति को नीचे खींच कर अपने पास कैद किया है। किसी चीज का अपमान करके

आदमी उससे भरपूर फायदा नहीं उठा सकता।अगर मूलाधार को छि-छि करते रहोगे, तो उस पर कुंडलिनी छवि का ध्यान करके उसे जगाओगे कैसे। उस छवि पर ही अगर ऐसा इल्जाम लगाओगे कि इसने मेरी सारी शक्ति छीन ली है, तो उसे और शक्ति कैसे दोगे। अतिरिक्त या अन्यूजड शक्ति तो उसमें जाएगी ही, अनजाने में और वहाँ सुषुप्त पड़ी रहेगी। वह शक्ति वहाँ तभी अवचेतन मन को उघाड़ पाएगी, यदि उसे ऐसा करने का मौका दोगे और उसके साथ सहयोग करोगे। तभी तो आपने देखा होगा कि सेक्सी किस्म के लोग बहुत गहराई से देखने और सोचने वाले होते हैं। यह इसलिए क्योंकि उनके मन में ज्यादा कचरा नहीं होता। वे अपनी मूलाधार स्थित यौन शक्ति से मन के कचरे को लगातार साफ करते रहते हैं, और दूसरी तरफ साफसुथरे होने का और यौनता से दूरी रखने का दिखावा करने वाले अंदर से अवचेतन मन के कचरे से भरे होते हैं। सेक्सी आदमी स्पष्टवादी और तेज दिमाग लिए होते हैं। उनका ध्यान शरीर के दूसरे क्षेत्रों की बजाय मूलाधार क्षेत्र में ज्यादा टिका होता है। हालांकि चेहरा और मूलाधार आपस में जुड़े होते हैं। मुनि की दृष्टि रूपी क्रोधाग्नि से उन साठ हजार पुत्रों का भस्म होना मतलब मन के सभी विचारों और भावनाओं का मूलाधार में शक्ति के साथ सो जाना। मतलब कुंडलिनी शक्ति अवचेतन मन को साथ लेकर सुषुप्तावस्था में चली गई। सगर वंश में कई पीढ़ियों के बाद भागीरथ नामक एक महापुरुष हुआ जो गंगा को लाने में स्मर्थ हुआ जिसने सभी सगरपुत्रों को जीवित करके मुक्त कर दिया मतलब व्यक्ति कई जन्मों के बाद इस काबिल हुआ कि सुषुम्ना को जागृत करके कुंडलिनी जागरण को प्राप्त कर सका जिससे अवचेतन मन (पाताल लोक समतुल्य) में दबे हुए विचार और भावनाएं आनंद, अद्वैत व आनंद के साथ अभिव्यक्त होते गए और ब्रह्म में विलीन होते गए। भागीरथ ने घोर तपस्या की मतलब कुंडलिनी योग किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वर दिया मतलब कुंडलिनी सहस्रार में क्रियाशील हो गई। सहस्रार चक्र भी कमल की तरह है और ब्रह्मा भी कमल पर बैठते हैं। कैलाश पर रहने वाले शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में धारण किया मतलब सुषुम्ना नाड़ी में बहती हुई चेतना रेखा सहस्रार में समाहित हो जाती है। सहस्रार चक्र बालों से भरे हुए सिर के अंदर ही होता है। कई जगह सहस्रार को कैलाश पर्वत की उपमा दी जाती है। वह गंगा स्वर्ग लोक से आई मतलब सुषुम्ना में बहती हुई शक्ति से सहस्रार चक्र दिव्यता अर्थात दिव्य लोक के साथ जुड़ जाता है जिसे कुंडलिनी जागरण के दौरान का अनुभव कहते हैं। दरअसल अवचेतन मन का स्थान भी मस्तिष्क ही है, पर क्योंकि वह मुलाधार से ऊपर आती सुषुम्ना-शक्ति से जागता है, इसलिए कहा जाता है कि वह मूलाधार चक्र में शक्ति के साथ सुषुप्तावस्था में फंसा हुआ था। इसी तरह अगर अवचेतन मन को ध्यान लगाकर उघाड़ने लगो तो मूलाधार और सुषुम्ना क्रियाशील होने लगते हैं। मतलब ये तीनों आपस में जुड़े हैं। इसीलिए इस मिथकीय कहानी में कहा गया है कि गंगा मतलब सुषुम्ना शक्ति स्वर्ग मतलब जागृति के सर्वव्यापी व सर्वानन्दमयी अनुभव से कैलाश मतलब मस्तिष्क को आई, वहाँ से नीचे हिमालय मतलब रीढ़ की हड्डी से उतरते हुए महासागर अर्थात दुनिया अर्थात विभिन्न चक्रौं से गुजरते हुए पाताल लोक मतलब मूलाधार चक्र में पहुंची। होता उल्टा है दरअसल, मतलब शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है। फिर कहते हैं कि भागीरथ गंगा के साथ-साथ चलता रहा, और जहाँ भी उसका मार्ग अवरुद्ध हो रहा था, वहाँ-वहाँ वह उस अवरोध को हटा रहा था। यह ऐसे ही है जैसे आदमी बारीबारी से चक्रौं पर ध्यान लगाते हुए शक्ति के अवरोधों को दूर करता है। चक्र-ब्लॉक ही वे अवरोधन हैं। तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय भगोड़े इस्लामिक विद्वान और आतंकवाद के आरोपों से घिरे जाकिर नईक जैसे लोगों को यह ब्लॉग जरूर फॉलो करना चाहिए, क्योंकि वह हिंदु शास्त्रों के मिथकीय पक्ष को तो उजागर करके दुष्प्रचार से उन्हें बदनाम करने की कोशिश करते हैं, पर उनके वैज्ञानिक पक्ष से अपरिचित हैं।

अध्याय-7
कुंडलिनी जागरण से आत्मा की पारलौकिक परमावस्था का पता नहीं चलता

मित्रो, मैं कुछ दिन पहले रिलेक्स होने के लिए इस कड़ी गर्मी में दिन की धूप में छतरी लेकर बाहर निकला। चारों तरफ गलियों की सड़कों का जाल था, पर छायादार पेड़ कम थे। जहाँ थे, वहाँ उनके नीचे चबूतरे नहीं बने थे बैठने के लिए। पूरी कॉलोनी में तीन-चार जगह चबूतरे वाले पेड़ थे। मैं बारी-बारी से हर चबूतरे पर बैठता रहा, और आसपास से आ रही कोयल की संगीतमयी आवाज का आनंद लेता रहा। गाय और बैल मेरे पास आ-जा रहे थे, क्योंकि उनको पता था कि मैं उनके लिए आटे की पिन्नियां लाया था। अच्छा है, अगर सैरसपाटे के साथ कुछ गौसेवा भी होती रहे। एक छोटे चबूतरे पर पेड़ से सटा हुआ एक पत्थर था। मैं उसपे बैठा तो मेरा खुद ही एक ऐसा आसन लग गया, जिसमें मेरा स्वाधिष्ठान चक्र पेड़ को मजबूती से छू रहा था, और पीठ पेड़ के साथ सीधी और छाती के पीछे पीठ की हड्डी पेड़ से सटी हुई थी। इससे मेरे मन में वर्षों पुरानी रंगबिरंगी भावनाएं उमड़ने लगीं। बेशक पुरानी घटनाओं के दृश्य मेरे सामने नहीं थे, पर उनसे जुड़ी भावनाएँ बिल्कुल जीवंत और ताज़ा थीं। ऐसा लग रहा था जैसे कि वे भावनाएं सत्य हों और उस अनुभव के समय वर्तमान में ही बनी हों। यहाँ तक कि अपने असली घटनाकाल में भी वे भावनाएँ उतनी सूक्ष्म और प्रत्यक्ष रूप में अनुभव नहीं हुई थीं, जितनी उस स्मरणकाल में अनुभव हो रही थीं। भावनाओं के साथ आनंद तो रहता ही है। असल में भावनाएँ ही घटनाओं का सार या चेतन आत्मा होती है। भावना के बिना तो घटना निष्प्राण और निर्जीव होती है। सम्भवतः स्वाधिष्ठान चक्र को इसीलिए इमोशनल बेगेज या भावनाओं का थैला भी कहते हैं। वैसे तो सभी चक्रौं के साथ विचारात्मक भावनाएँ जुड़ी होती हैं। स्वाधिष्ठान चक्र से इसलिए ज्यादा जुड़ी होती हैं, क्योंकि सम्भोग सबसे बड़ा अनुभव है, और उसी अनुभव के लिए आदमी अन्य सभी अनुभव हासिल करता है। मतलब कि सम्भोग का अनुभव हरेक अनुभव पर हावी होता है। विज्ञान भी इस बात को मानता है कि सम्भोग ही जीवन के हरेक पहलू के विकास के लिए मूल प्रेरक शक्ति है। क्योंकि स्वाधिष्ठान चक्र सम्भोग का केंद्र है, इसलिए स्वाभाविक है कि उससे सभी भावनाएं जुड़ी होंगी।

किसी भी चीज में रहस्य इसलिए लगता है, क्योंकि हम उसे समझ नहीं पाते, नहीं तो कुछ भी रहस्य नहीं है। जो कुछ समझ आ जाता है, वह विज्ञान ही लगता है। पूरी सृष्टि हाथ पे रखे आंवले की तरह सरल और प्रत्यक्ष है, यदि लोग योग विज्ञान के नजरिए से इसे समझें, अन्यथा इसके झमेलों का कोई अंत नहीं है।

मूलाधार को ग्राउंडिंग चक्र इसलिए कहते हैं क्योंकि वह मस्तिष्क को ऐसे ही अपने से जोड़ता है, जैसे पेड़ की जड़ पेड़ को अपने से जोड़कर रखती है। मूल का शाब्दिक अर्थ ही जड़ होता है। जैसे जड़ मिट्टी के सहयोग से अपनी ऊर्जा पैदा करके पेड़ को पोषण भी देती है और खुद भी पेड़ के पत्तों से अतिरिक्त ऊर्जा को अपनी ओर नीचे खींचकर खुद भी मजबूत बनती है, उसी तरह मूलाधार भी सम्भोग से अपनी ऊर्जा पैदा करके मस्तिष्क को ऊर्जा की आपूर्ति भी करता है, और मस्तिष्क में निर्मित फालतू विचारों की ऊर्जा को अपनी तरफ नीचे खींचकर खुद भी ताकतवर बनता है।

फिर एक दिन मैं फिर से उसी पुरानी झील के किनारे गया। एक पेड़ की छाँव में बैठ गया। मुझे अपनी सेहत भी ठीक नहीं लग रही थी, और मैं थका हुआ सा महसूस कर रहा था। लग रहा था कि जुकाम के वायरस का हमला हो रहा था मेरे ऊपर, क्योंकि एकदम से मौसम बदला था। अचानक भारी बारिश से भीषण गर्मी के बीच में एकदम से कड़ाके की ठंड पड़ी थी। उससे स्वाभाविक है कि मन भी कुछ बोझिल सा था। सोचा कि वहाँ शांति मिल जाए। गंगापुत्र भीष्म पितामह भी इसी तरह गंगा नदी के किनारे जाया करते थे शांति के लिए। मुझे तो लगता है कि यह एक रूपक कथा है। क्योंकि भीष्म पितामह आजीवन ब्रह्मचारी थे, इसलिए स्वाभाविक है कि उनकी यौन ऊर्जा बाहर की ओर बर्बाद न होकर पीठ की सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर चढ़ती थी। इसे ही ही भीष्म पितामह का बारम्बार गंगा के पास जाना कहा गया है। गंगा नदी सुषुम्ना नाड़ी को कहा जाता है। क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी अपनी ऊर्जा रूपी दुग्ध से बालक रूपी कुंडलिनी-मन का पोषण-विकास करती है, इसीलिए गंगारूपी सुषुम्ना को माँ कहा गया है। थोड़ी देर बाद मैं मीठी और ताज़ा हवा की लम्बी सांस लेते हुए उस पर ध्यान देने लगा। इससे पुराने भावनात्मक विचार मन में ऐसे उमड़ने लगे, जैसे तेज हवा चलने पर आसमान में धूल उमड़ आती है। अगर आदमी धूल को देखने लगे, तो उसका दम जैसा घुटता है, और मन उदास हो जाता है। यदि उस पर ध्यान न देकर केवल हवा को महसूस करे, तो वह प्रसन्नचित हो जाता है। मैंने भी उन विचारों की धूल पर ध्यान देना बंद कर दिया, और सांसों पर ध्यान देने लगा। विचार तो तब भी थे, पर तब परेशान नहीं कर रहे थे। सांस और विचार हमेशा साथ रहते हैं। आप उन्हें अलग नहीं कर सकते, ऐसे ही जैसे हवा और धूल साथ रहते हैं। हवा है, तो धूल भी है, और धूल है तो हवा भी है। अगर आप धूल हटाने के लिए दीवार आदि लगा दो, तो वहाँ हवा भी नहीं आएगी। इसी तरह यदि आप बलपूर्वक विचारों को दबाएंगे, तो सांस भी दब जाएगी। और ये आप जानते ही हैँ कि सांस ही जीवन है। इसलिए विचारों को दबाना नहीं है, उनसे ध्यान हटाकर सांसों पर केंद्रित करना है। विचारों को आतेजाते रहने दो। जैसे धूल के कण थोड़ी देर उड़ने के बाद एकदूसरे से जुड़कर

या नमी आदि से भारी होकर नीचे बैठने लगते हैं, उसी तरह विचार भी श्रृंखलाबद्ध होकर मन के धरातल में गायब हो जाते हैं। बस यह करना है कि उन विचारों की धूल को ध्यान रूपी छेड़ा नहीं देना है। बाहर के विविध दृश्य नजारे और आवाजें मन के धरातल को मजबूत करते हैं, जिससे फालतू विचार उसपे लैंड करते रह सकें। इसीलिए लोग ऐसे कुदरती नजारों की तरफ भागते हैं। जैसे धूल का कुछ हिस्सा आसमान में दूर गायब हो जाता है और बाकि ज्यादातर हिस्सा फिर से उसी जमीं पर बैठता है, इसी तरह विचारों के उमड़ने से उनका थोड़ा हिस्सा ही गायब होता है, बाकि बड़ा हिस्सा पुनः उसी मन के धरातल पर बैठ जाता है। इसीलिए तो एक ही किस्म के विचार लम्बे समय तक बारबार उमड़ते रहते हैं, बहुत समय बाद ही पूरी तरह गायब हो पाते हैं। बारीक़ धूल जैसे हल्के विचार जल्दी गायब हो जाते हैं, पर मोटी धूल जैसे आसक्ति से भरे स्थूल विचार ज्यादा समय लेते हैं। इसीलिए यह नहीं समझना चाहिए कि एकबार के साक्षीभाव से विचार गायब होकर मन निर्मल हो जाएगा। लम्बे समय तक साधना करनी पड़ती है। आसान खेल नहीं है। इसलिए जिसे जल्दी हो और जो इंतजार न कर सके, उसे साधना करने से पहले सोच लेना चाहिए। वैसे भी मुझे लगता है कि यह दुनिया से कुछ दूरी बनाने वाली साधना उन्हीं लोगों के लिए योग्य है, जो अपनी कुंडलिनी को जागृत कर चुके हैं, या जो दुनिया के लगभग सभी अनुभवों को हासिल कर चुके हैं। आम लोग तो इससे गुमराह भी हो सकते हैं। आम लोगों के लिए तो व्यावहारिक कर्मयोग ही सर्वोत्तम है। हालांकि जो लोग एकसाथ विविध साधना मार्गों पर चलने की सामर्थ्य और योग्यता रखते हैं, उनके लिए ऐसी कोई पाबंदी नहीं। थोड़ी ही देर में मेरा शरीर खुद ही भिन्न-भिन्न सिटिंग पोज बनाने लगा, ताकि कुंडलिनी ऊर्जा को मूलाधार चक्र से ऊपर चढ़ने में आसानी हो। स्वतोभूत योगासनों को मैंने पहली बार ढंग से महसूस किया, हालांकि घर में बिस्तर पर रिलेक्स होते हुए मेरे आसन लगते ही रहते हैं, ख़ासकर शाम के 5-6 बजे के बीच। सम्भवतः ऐसा दिनभर की थकान को दूर करने के लिए होता है, संध्या का ऊर्जावर्धक प्रभाव भी होता है साथ में। तो लगभग सुबह के थकानरहित समय में झील के निकट मेरी कुंडलिनी ऊर्जा का उछालें मारने का मतलब था कि मेरी थकान काम के बोझ से नहीं हुई थी, बल्कि किसी आसन्न रोग की वजह से थी। वह उसका एडवांस में इलाज करने के लिए आई थी। कुंडलिनी ऊर्जा इंटेलिजेंट होती है, इसलिए सब समझती है। विचारों के प्रति साक्षीभाव के साथ कुछ देर तक लम्बी और गहरी साँसे लेने से कुंडलिनी ऊर्जा को ऊपर चढ़ाने वाला दबाव तैयार हो गया था। जूते के सोल की पिछली नोक की हल्की चुभन से मूलाधार चक्र आर्गेस्मिक आनंदमयी संवेदना के साथ बहुत उत्तेजित हुआ, जिससे कुंडलिनी ऊर्जा उफनती नदी की तरह ऊपर चढ़ने लगी। विभिन्न चक्रौं के साथ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों में आर्गेस्मिक आनंदमयी संवेदना महसूस होने लगी। ऐसा लग रहा था कि जैसे कुंडलिनी ऊर्जा से पूरा शरीर रिचार्ज हो रहा था। साँसें भी आर्गेस्मिक आनंद से भर गई थीं। कुंडलिनी के साथ आगे के आज्ञा चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र और वज्र शिखा के संयुक्त ध्यान से ऊर्जा आगे से नीचे के हिस्से में उतरकर सभी चक्रौं के साथ पूरे शरीर को शक्तियुक्त कर रही थी। दरअसल आमधारणा के विपरीत मूलाधार चक्र में अपनी ऊर्जा नहीं होती, बल्कि उसे संभोग से ऊर्जा मिलती है। मूलाधार को रिचार्ज किए बगैर ही अधिकांश लोग वहाँ से ऊर्जा उठाने का प्रयास उम्रभर करते रहते हैं, पर कम ही सफल हो पाते हैं। सूखे कुएँ में टुलु पम्प चलाने से क्या लाभ। मूलाधार के पूरी तरह डिस्चार्ज होने के बाद यौन अंगों, विशेषकर प्रॉस्टेट का दबाव बहुत कम या गायब हो जाता है। उससे फिर से मन सम्भोग की तरफ आकर्षित हो जाता है, जिससे मूलाधार फिर से रिचार्ज हो जाता है। वैसे तो योग आधारित साँसों से भी मूलाधार चक्र शक्ति से आवेशित हो जाता है, जो संन्यासियों के लिए एक वरदान की तरह ही है। चाय से प्रॉस्टेट समस्या बढ़ती है, ऐसा कहते हैं। दरअसल चाय से मस्तिष्क में रक्तसंचार का दबाव बढ़ जाता है, इसीलिए तो चाय पीने से सुहाने विचारों के साथ फील गुड महसूस होता है। इसका मतलब है कि फिर यौन अंगों से ऊर्जा को ऊपर चढ़ाने वाला चुसाव नहीं बनेगा। इससे कुंडलिनी ऊर्जा घूमेगी नहीं, जिससे यौन अंगों समेत पूरे शरीर के रोगी होने की सम्भावना बढ़ेगी। उच्च रक्तचाप से भी ऐसी ही सैद्धांतिक वजह से प्रॉस्टेट की समस्या बढ़ती है। ऐसा भी लगता है कि प्रॉस्टेट की इन्फेलेमेशन या उत्तेजना भी इसके बढ़ने की वजह हो सकती है। स्वास्थ्य वैज्ञानिक भी ऐसा ही अंदेशा जता रहे हैं। जरूरत से ज्यादा तांत्रिक सम्भोग से प्रॉस्टेट उत्तेजित हो सकती है। तांत्रिक वीर्यरोधन से एक चुसाव भी पैदा हो सकता है जिससे संक्रमित योनि का गंदा स्राव प्रॉस्टेट तक भी पहुंच सकता है, जिससे प्रोस्टेट में इन्फेलेमेशन और संक्रमण पैदा हो सकता है। इसे एंटीबायोटिक से ठीक करना भी थोड़ा मुश्किल हो सकता है। इसीलिए खूब पानी पीने को कहा जाता है, ताकि गंदा स्राव मूत्रनाल से बाहर धुल जाए। योनि-स्वास्थ्य का भी भरपूर ध्यान रखा जाना चाहिए। वैसे आजकल प्रोस्टेट की हर समस्या का इलाज है, प्रोस्टेट कैंसर का भी, यदि समय रहते जाँच में लाया जाए। क्योंकि पुराने जमाने में ऐसी सुविधाएं नहीं थीं, इसीलिए तंत्र विद्या को गुप्त रखा जाता था। इस ब्लॉग की एक पुरानी पोस्ट में कबूतर बने अग्निदेव को दिए माता पार्वती के श्राप को जो दिखाया गया है, जिसमें वे उसे उसके द्वारा किए घृणित कार्य की सजा के रूप में उसे लगातार जलन महसूस करने का शाप देती हैं, वह सम्भवतः प्रॉस्टेट के संबंध में ही है। योगी इस जलन की ऊर्जा को कुंडलिनी को देने के लिए पूर्ण सिद्धासन लगाते हैं। इसमें एक पाँव की एड़ी से मूलाधार पर दबाव लगता है, और दूसरे पाँव की एड़ी से आगे के

स्वाधिष्ठान चक्र पर। इसलिए यह अर्ध सिद्धासन से बेहतर है क्योंकि अर्धसिद्धासन में दूसरा पैर भी जमीन पर होने से स्वाधिष्ठान पर नुकीला जैसा संवेदनात्मक और आर्गेस्मिक दबाव नहीं लगता। इससे स्वाधिष्ठान की ऊर्जा बाहर नहीं निकल पाती। कुंडलिनी ऊर्जा के घूमते रहने से यह यौनता-आधारित सिलसिला चलता रहता है, और आदमी का विकास होता रहता है। हालांकि यह सिलसिला साधारण आदमी में भी चलता है, पर उसमें इसका मुख्य लक्ष्य द्वैतपूर्ण दुनियादारी से संबंधित ही होता है। जबकि कुंडलिनी योगी का लक्ष्य कुंडलिनी युक्त अद्वैतपूर्ण जीवनयापन होता है। साधारण आदमी में बिना किसी प्रयास के ऊर्जा चढ़ती है, इसलिए यह प्रक्रिया धीमी और हल्की होती है। जबकि कुंडलिनी योगी अपनी इच्छानुसार ऊर्जा को चढ़ा सकता है, क्योंकि अभ्यास से उसे ऊर्जा नाड़ियों का और उन्हें नियंत्रित करने का अच्छा ज्ञान होता है, जिससे शक्ति उसके वश में आ जाती है। तांत्रिक योगी तो इससे भी एक कदम आगे होता है। इसीलिए तांत्रिकों पर सामूहिक यौन शोषण के आरोप भी लगते रहते हैं। वे कठोर तांत्रिक साधना से शक्ति को इतना ज्यादा वश में कर लेते हैं कि वे कभी सम्भोग से थकते ही नहीं। ऐसा ही मामला एक मेरे सुनने में भी आया था कि एक हिमालयी क्षेत्र में मैदानी भूभाग से आए तांत्रिक के पास असली यौन आनंद की प्राप्ति के लिए महिलाओं की पंक्ति लगी होती थी। कुछ लोगों ने हकीकत जानकर उसे पीटा भी, फिर पता नहीं क्या हुआ। तांत्रिकों के साथ यह बहुत बड़ा धोखा होता है। आम लोग उनके कुंडलिनी अनुभव को नहीं देखते, बल्कि उनकी साधना के अंगभूत घृणित खानपान और आचार-विचार को देखते हैं। वे आम नहीं खाते, पेड़ गिनते हैं। इससे वे उनका अपमान कर बैठते हैं, जिससे उनकी तांत्रिक कुंडलिनी वैसे लोगों के पीछे पड़ जाती है, और उनका नुकसान करती है। इसी को देवता का खोट लगना, श्राप लगना, बुरी नजर लगना आदि कहा जाता है। इसीलिए तांत्रिक साधना को, विशेषकर उससे जुड़े तथाकथित कुत्सित आचारों-विचारों को गुप्त रखा जाता था। साधारण लोक परिस्थिति में भी तो लोग तांत्रिक विधियों का प्रयोग करते ही हैं, पर वे साधारण सम्भोग चाहते हैं, यौन योग नहीं। शराब से शबाब हासिल करना हो या मांसभक्षण से यौनसुख को बढ़ाना हो, सब में यही सिद्धांत काम करता है। ऐसी चीजों से दिमाग़ के विचार शांत होने से दिमाग़ में एक वैक्यूम पैदा हो जाता है, जो मूलाधार से ऊर्जा को ऊपर चूसता है। इससे आगे के चैनल से ऊर्जा नीचे आ जाती है। इससे ऊर्जा घूमने लगती है, जिससे सभी अंगों के साथ मूलाधार से जुड़े अंग भी पुनः सक्रिय और क्रियाशील हो जाते हैं। मुझे तो लगता है कि बीयर पीने से जो पेशाब खुल कर आता है, वह इससे यौनांगों का दबाव कम होने से ही आता है, न कि इसमें मौजूद पानी से, जैसा अधिकांश लोग समझते हैं। सीधे पानी पीने से तो पेशाब इतना नहीं खुलता, चाहे जितना मर्जी पानी पी लो। अल्कोहल का प्रभाव मिटने पर पुनः दबाव बन जाए, यह अलग बात है। अब कोई यह न समझ ले कि अल्कोहल से कुंडलिनी ऊर्जा को घूमने में मदद मिलती है, इसलिए यह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। हाहाहा। टेस्टॉस्टिरोन होर्मोन ब्लॉकर से इसलिए प्रॉस्टेट दबाव कम होता है, क्योंकि उससे इस होर्मोन की यौनाँग प्रेरक शक्ति क्षीण हो जाती है। इसके विपरीत, बहुत से आदर्शवादी पुरुष अपनी स्त्री को संतुष्ट नहीं कर पाते। मुझे मेरा एक दोस्त बता रहा था कि एक आदर्शवादी और संत प्रकार के उच्च सरकारी प्रोफेसर की पत्नि जो खुद भी एक सरकारी उच्च अधिकारी थी, उसने अपने कार्यालय से संबंधित एक बहुत मामूली से अविवाहित नवयुवक कर्मचारी से अवैध संबंध बना रखे थे। जब उन्हें इस बात का पता पुख्ता तौर पर चला, तो उनको इतना ज्यादा भावनात्मक सदमा लगा कि वे बेचारे सब कुछ यहीं छोड़कर विदेश चले गए, क्योंकि उन्हें पता चल गया था कि एक औरत को जब अश्लीलता का चस्का लग जाए तो उसे उससे पीछे हटाना बहुत मुश्किल है, हालांकि असम्भव नहीं है। हालांकि एक औरत के लिए व उसके अवैध प्रेमी के लिए ऐसा करना बहुत नुकसानदायक हो सकता है, विशेषकर यदि उसका असली प्रेमी या पति सिद्ध प्रेमयोगी हो। शिवपुराण के अनुसार जब शिव और पार्वती का विवाह हो रहा था, तो ब्रह्मा उस विवाह में पुरोहित की भूमिका निभा रहे थे। शिवपार्वती से पूजन करवाते समय ब्रह्मा की नजर पार्वती के पैर के नख पर पड़ गई। उसे वे मोहित होकर देखते ही रहे और पार्वती पर कमासक्त हो गए। इससे उनका वीर्यपात हो गया। शिव को इस बात का पता चल गया। इससे शिव इतने ज्यादा क्रोधित हुए कि प्रलय मचाने को तैयार हो गए। बड़ी मुश्किल से देवताओं ने उन्हें मनाया, फिर भी उन्होंने ब्रह्मा को भयंकर श्राप दे ही दिया। प्रलय तो टल गई पर ब्रह्मा की बहुत बड़ी दुर्गति हुई। यदि पार्वती के मन में भी विकार पैदा हुआ होता, और वह ब्रह्मा के ऊपर कमासक्त हुई होती, तो उसे भी शिव की कुंडलिनी शक्ति दंड देती। यदि वह शिव की अतिनिकट संगति के कारण उस दंड से अप्रभावित रहती, तो उस दंड का प्रभाव उससे जुड़े कमजोर मन वाले उसके नजदीकी संबंधियों पर पड़ता, जैसे उसकी होने वाली संतानेँ आदि। ऐसा सब शिव की इच्छा के बिना होता, क्योंकि कौन अपनी पत्नि को दंड देना चाहता है। दरअसल कुंडलिनी खुद ही सबकुछ करती है। यदि ऐसा कुत्सित कुकर्म अनजाने में हो जाए तो इसका प्रायश्चित यही है कि दोनों अवैध प्रेमी मन से एकदूसरे को भाई-बहिन समझें और यदि कभी अपनेआप मुलाक़ात हो जाए, तो एक दूसरे को भाई-बहिन कह कर सम्बोधित करें, और सच्चे मन से कुंडलिनी से माफी मांगे, ऐसा मुझे लगता है। जो हुआ, सो हुआ, उसे भूल जाएं। आगे के लिए सुधार किया जा सकता है। मेरे उपरोक्त ऊर्जा-उफान से मुझे ये लाभ मिला कि एकदम से मुझे छीकें शुरु हो गईं, और नाक से पानी बहने लगा, जिससे जुकाम का वायरस दो दिन में ही गायब हो

गया। गले तक तो वह लगभग पहुंच ही नहीं पाया। दरअसल वह कुंडलिनी ऊर्जा वायरस के खिलाफ इसी सुरक्षा चक्र को मजबूती देने के लिए उमड़ रही थी। इसी तरह एकबार कई दिनों से मैं किसी कारणवश भावनात्मक रूप से चोटिल अवस्था में था। शरीरविज्ञान दर्शन की भावना से कुंडलिनी मुझे स्वस्थ भी कर रही थी, पर कामचलाऊ रूप में ही। फिर एक दिन तांत्रिक कुंडलिनी योग की शक्ति से कुंडलिनी ऊर्जा लगातार मेरे दिल पर गिरने लगी। मैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान और आज्ञा चक्र और नासिकाग्र के साथ छाती के बाईं ओर स्थित दिल पर भी ध्यान करने लगा। इससे दोनों कुंडलिनी चैनल भी महसूस हो रहे थे, और साथ में उससे दिल की ओर जाती हुई ऊर्जा भी और फिर पुनः नीचे उसी केंद्रीय चैनल में उसे जुड़ते हुए महसूस कर रहा था। यह सिलसिला काफी देर तक चलता रहा, जिससे मेरी यौन कुंडलिनी ऊर्जा से मेरा दिल बिल्कुल स्वस्थ हो गया। बाद में यह मेरे व्यवहार में एकाएक परिवर्तन से और लोगों के मेरे प्रति सकारात्मक व्यवहार से भी सिद्ध हो गया।

चलो, फिर से अध्यात्म की तरफ लौटते हैं। वैसे अध्यात्म भी दुनियादारी के बीच ही पल्लवित-पुष्पित होता है, उससे अलग रहकर नहीं, ऐसे ही जैसे सुंदर फूल काँटों के बीच ही उगते हैं। कांटे ही फूलों की शत्रुओं से रक्षा करते हैं। मैं एक पोस्ट में जो प्रकृति-पुरुष विवेक के बारे में बात कर रहा था, उसे अपने समझने के लिए थोड़ा विस्तार दे रहा हूँ, क्योंकि कई बार मैं यहाँ अटक जाता हूँ। चाहें तो पाठक भी इसे समझ कर फायदा उठा सकते हैं। वैसे है यह पूरी थ्योरी ही, प्रेक्टिकल से बिल्कुल अलग। हाँ, थ्योरी को समझ कर आदमी प्रेक्टिकल की ओर प्रेरित हो सकता है। जब कुछ क्षणों के लिए मुझे कुंडलिनी-पुरुष अपनी आत्मा से पूर्णतः जुड़ा हुआ महसूस हुआ, मतलब कि जब मैं प्रकृति से मुक्त पुरुष बन गया था, तब ऐसा नहीं था कि उस समय प्रकृति रूपी विचार और दृश्य अनुभव नहीं हो रहे थे। वे अनुभव हो रहे थे, और साथ में कुंडलिनी चित्र भी, क्योंकि वह भी तो एक विचार ही तो है। पर वे मुझे मुझ पुरुष के अंदर और उससे अविभक्त ऐसे महसूस हो रहे थे, जैसे समुद्र में लहरें होती हैं। इसका मतलब है कि वे उस समय प्रकृति रूप नहीं थे, क्योंकि उनकी पुरुष रूप आत्मा से अलग अपनी कोई सत्ता नहीं थी। आम साधारण जीवन में तो प्रकृति की अपनी अलग सत्ता महसूस होती है, हालांकि ऐसा मिथ्या होता है पर भ्रम से सत्य लगता है। दुनियादारी झूठ और भ्रम पर ही टिकी है। दरअसल कुंडलिनी चित्र अर्थात मन पुरुष और प्रकृति के मेल से बना होता है। जब वह निरंतर ध्यान से अज्ञानावृत आत्मा से एकाकार हो जाता है, तब वह शुद्ध अर्थात पूर्ण पुरुष बन पाता है। मतलब कि तब ही वह प्रकृति के बंधन से छूट पाता है। पूर्ण और शुद्ध पुरुष का असली अनुभव परमानंद स्वरूप जैसा होता है। इससे स्वाभाविक है कि उसके पूर्ण अनुभव के साथ भी तो मन के विचार चित्र तो उभरेंगे ही। पर तब वे ऐसे मिथ्या या आभासी महसूस होंगें जैसे चूने के ढेर में खींची लकीरें। मतलब उनकी सत्ता नहीं होगी, केवल पुरुष की सत्ता होगी। इसीलिए तो उस कुंडलिनी जागरण के चंद क्षणों में परमानंद के साथ सब कुछ पूरी तरह एक सा ही महसूस होता है, सबकुछ अद्वैत। जीवित मनुष्य में आनंद के साथ मन के विचार बंधे होते हैं। आनंद के साथ विचार आएंगे ही आएंगे। इस तरह से पूर्ण निर्विचार अवस्था के साथ आत्मरूप का अनुभव असम्भव के समान ही है जीवित अवस्था में। वैसे साधना की वह सर्वोच्च अवस्था होती है। वहाँ तक असंख्य आत्मज्ञानियों में केवल एक-आध ही पहुंच पाता है। उसीके पारलौकिक अनुभव को वेदों में लिखा गया है, जिसे आप्तवचन कहते हैं। उस पर विश्वास करने के इलावा पूर्ण मुक्त आत्मा की पारलौकिक अवस्था को जानने का कोई तरीका नहीं है। ऐसा नहीं है कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी इस परमावस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। वह कर सकता है, पर जानबूझकर नहीं करता। इसकी मुख्य वजह है परमावस्था का अव्यवहारिक होना। यह अवस्था संन्यास की तरह होती है। इस अवस्था में आदमी प्रतिस्पर्धात्मक दुनिया में भौतिक रूप से पिछड़ जाता है। यहाँ तक कि खाने के भी लाले पड़ सकते हैं। अभी मानव समाज इतना विकसित नहीं हुआ है कि इस अवस्था के योग्य उम्मीदवारों के भरणपोषण और सुरक्षा का उत्तरदायित्व संभाल सके। सम्भवतः प्राचीन भारत में कोई ऐसी कार्यप्रणाली विकसित कर ली गई थी, तभी तो उस समय संन्यासी बाबाओं का बोलबाला हुआ करता था। पर आज के तथाकथित आधुनिक भारत में ऐसे बाबाओं की हालत बहुत दयनीय प्रतीत होती है। प्राचीन भारत में समाज का, विशेषकर समाज के उच्च वर्ग का पूरा जोर कुंडलिनी जागरण के ऊपर होता था। यह सही भी है, क्योंकि कुंडलिनी ही जीवविकास की अंतिम और सर्वोत्तम ऊंचाई है। हिन्दुओं की अनेकों कुंडलिनी योग आधारित परम्पराओं में उपनयन संस्कार में पहनाए जाने वाले जनेऊ अर्थात यग्योपवीत के पीछे भी कुंडलिनी सिद्धांत ही काम करता है। इसे ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। इसका मतलब है ब्रह्म अर्थात कुंडलिनी की याद दिलाने वाला धागा। कई लोग कहते हैं कि यह बाईं बाजू की तरफ फिसल कर काम के बीच में अजीब सा व्यवधान पैदा करता है। सम्भवतः यह अंधे कर्मवाद से बचाने का एक तरीका हो। यह भी लगता है कि इससे यह शरीर के बाएं भाग को अतिरिक्त बल देकर इड़ा और पिंगला नाड़ियों को संतुलित करता है, क्योंकि बिना जनेऊ की साधारण परिस्थिति में आदमी का ज्यादा झुकाव दाईं तरफ ही होता है। इसे शौच के समय तब तक दाएं कान पर लटका कर रखा जाता है, जब तक आदमी शौच से निवृत होकर जल से पवित्र न हो जाए। इसके दो मुख्य लाभ हैं। एक तो यह कि शौच-स्नान आदि के समय क्रियाशील रहने वाले मूलाधार चक्र की शक्तिशाली ऊर्जा कुंडलिनी को लगती रहती है, और दूसरा यह

कि आदमी की अपवित्र अवस्था का पता अन्य लोगों को लगता रहता है। इससे एक फायदा यह होता है कि इससे शौच के माध्यम से फैलने वाले संक्रामक रोगों से बचाव होता है, और दूसरा यह कि शौच जाने वाले आदमी की शक्तिशाली कुंडलिनी ऊर्जा का लाभ उसके साथ उसके नजदीकी लोगों को भी मिलता है, क्योंकि इससे वे उस ऊर्जा का गलत मतलब निकालने से होने वाले अपने नुकसान से बचे रह कर कुंडलिनी लाभ प्राप्त करते हैं। इसी तरह कमर के आसपास बाँधी जाने वाली मेखला से नाभि चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र स्वस्थ रहते हैं, जिससे पाचन सामान्य बना रहता है, और प्रॉस्टेट जैसी समस्याओं से भी बचाव होता है। यह अलग बात है कि क्रूर और अत्याचारी मुगल हमलावर औरंगजेब जनेऊ के कुंडलिनी विज्ञान को न समझते हुए प्रतिदिन तब खाना खाता था, जब तथाकथित काफ़िर लोगों के गले से सवा मन जनेऊ उतरवा लेता था। अफ़सोस की बात कि आज के वैज्ञानिक और लोकतान्त्रिक युग में भी विशेष वर्ग के लोग उसे अपना रोल मॉडल समझते हैं।

अध्याय-8

कुंडलिनी खोने से उत्पन्न पार्वती का कोप और रशियन सत्ताधीश का कोप~ एक तुलनात्मक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

दोस्तों, कई पौराणिक कथाओं को पूरी तरह से डिकोड नहीं किया जा सकता। इसलिए वहां अंदाजा लगाना पड़ता है। समथिंग इज बैटर देन नथिंग। हल्की शुरुआत से ये कथाएं भी बाद में डिकोड हो जाती हैं। ऐसी ही रहस्यमयी कथा गणेश देव को लेकर है। मुझे लगता है कि गणेश पार्वती देवी का कुंडलिनी पुरुष है। शिव के कुंडलिनी पुरुष के सहारे रहते हुए देवी पार्वती ऊब जैसी गई थीं। वे अपने को शिव के ऊपर निर्भर सा और परतन्त्र सा समझने लग गई थीं। खासकर उन्हें उनकी सहेलियों ने भी भड़काया था। इसीलिए देवी पार्वती कहती हैं कि वे शिवगणों की सुरक्षा के अंतर्गत रहते हुए एक पराधीन की तरह रह रही थीं। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे अपने लिए एक समर्पित गण पैदा करेंगी। एकबार वे निर्वस्त्र होकर स्नान कर रही थीं, पर भगवान शिव द्वारपाल नन्दी को डांटकर अंदर घुस गए, जिससे वे शर्मिंदा हो गईं। इसलिए उन्होंने अपने शरीर की मैल से सर्वांगसुन्दर और निर्दोष गणेश को पैदा किया। मैल को भी रज कहते हैं, और वीर्य के समकक्ष योनिद्रव को भी। सम्भवतः देव गणेश देवी पार्वती की यौन ऊर्जा के रूपांतरण से निर्मित मानसिक पुरुष हैं, जैसे भगवान कार्तिकेय भगवान शिव की यौन ऊर्जा से निर्मित मानसिक कुंडलिनी पुरुष हैं। पुत्र इसलिए क्योंकि बना तो योनि द्रव से ही सामान्य पुत्र की तरह, बेशक गर्भ में न बनकर मस्तिष्क या मन में बना। इसी वजह से तो यौनतन्त्र के अभ्यास से स्त्री में मासिक धर्म के द्रव का स्राव या रज का स्राव बहुत कम या शून्य भी हो जाता है। इससे स्त्री का कमजोरी से भी बचाव हो जाता है। इसी रज या शरीर के मैल से ही उसकी कुंडलिनी विकसित होती है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित रहेगा कि हमारे लिए देवी पार्वती पूजनीया हैं, सम्माननीया हैं। हम उनके बारे में सीधे तौर पर कुछ नहीं कह सकते। हम तो केवल देवी पार्वती के जैसे स्वभाव वाले मनुष्यों के बारे में बात कर रहे हैं। क्योंकि हर जगह तो ऐसा नहीं लिखा जा सकता, "देवी पार्वती के जैसे स्वभाव वाला मनुष्य", क्योंकि इससे बिना जरूरत के लेखन का विस्तार बढ़ जाएगा, और साथ में लोग भ्रमित होकर समझ नहीं पाएंगे। इसलिए मजबूरी में संक्षेप के लिए देवी पार्वती या सिर्फ पार्वती लिखना पड़ता है। एक प्रकार से हम व्यक्तित्व या स्वभाव का वर्णन करते हैं, किसी देव विशेष या व्यक्ति विशेष का नहीं। इसी तरह भगवान शिव आदि सभी देवी-देवताओं के बारे में भी समझना चाहिए। आशा और विश्वास है कि आम जनमानस और देवी-देवता इसे अन्यथा नहीं लेंगे। पार्वती ने गणेश को एक लाठी देकर निर्देश दिया कि कोई भी उसकी आज्ञा के बिना उसके घर के अंदर प्रविष्ट न होने पाए। पार्वती दरअसल जीवात्मा है। सहस्रार उसका घर है। गणेश को घर के बाहर खड़े करने का मतलब है, हरसमय कुंडलिनी के ध्यान में मग्न रहना। इससे कोई और चीज ध्यान में आ ही नहीं सकती, मतलब अपनी मर्जी से घर के अंदर प्रविष्ट नहीं हो सकती। जब जीवात्मा चाहेगा और कुंडलिनी से अपना ध्यान हटाएगा, तभी दूसरी चीज ध्यान रूपी घर में आ पाएगी। इससे पहले उसके मन में कुंडलिनी नहीं थी। इसलिए उसे न चाहते हुए भी शिव को और उसकी दुनियादारी को ध्यान-गृह में आने देना पड़ता था। नहाते समय वह नग्न थी, अर्थात आत्मा की गहराई के अंतरंग विचारों में खोई हुई थी। यह उनके लिए अच्छा जवाब है, जो यह गलत धारणा रखते हैं कि तन्त्र में स्त्री को पुरुष से निम्नतर समझा जाता है। दरअसल तन्त्र में पुरुष और स्त्री बराबर हैं, और दोनों के लिए समान प्रकार की साधनाएं बताई गई हैं। एकबार नन्दी को गणेश ने द्वार पर रोक दिया। इससे हैरान होकर शिव ने अपने नन्दी आदि गणों को बारी-2 से पार्वती के घर में प्रवेश करने को कहा, पर गणेश बालक ने अपनी लाठी से सबकी पिटाई कर दी। मतलब कि कुंडलिनी बालक की तरह कोमल होती है, जिसके पास जीवात्मा की रक्षा करने के लिए विशेष हथियार नहीं होते, पर लाठी को दर्शाता हुआ एक स्नेहभरा भय होता है। नंदी आदि गण यहाँ शिव के विचार हैं, जो शिव की आत्मा को पार्वती की आत्मा से मिलाने से पहले उससे अपना परिचय करवाना चाहते हैं। दुनिया में अक्सर ऐसा ही होता है। विचारों के माध्यम से ही लोगों का एकदूसरे से हार्दिक मिलन सम्भव हो पाता है। गणेश द्वारा लाठी से गणों को डराने या पीटने का मतलब है कि पार्वती अर्थात जीवात्मा बाहर से आ रहे विचारों की तरफ ध्यान न देकर कुंडलिनी पर ही ध्यान जमा कर रखती है। न तो विचारों का स्वागत करना है, और न ही उन्हें भगाना है। यही प्यार से भरा हुआ भय बना कर रखना है। यही विचारों या दुनियादारी के प्रति साक्षीभाव बना कर रखना है। यही विपासना है, विपश्यना है। गणेश द्वारा बारी-बारी से आए सभी देवताओं व गणों को हराना इसी बात को दर्शाता है कि पार्वती की कुंडलिनी शिवजी द्वारा प्रेषित किए गए सभी विचारों व भावनाओं से अप्रभावित रहती है। फिर सभी देवता इसको शिव के अपमान और उससे उत्पन्न जगहँसाई के रूप में लेते हैं। इसलिए वे सभी एक युद्धनीति बनाकर मिलकर लड़ते हैं, और धोखे से गणेश का वध कर देते हैं। मतलब कि शिव पार्वती को दुनियादारी में इतना उलझा देते हैं कि वह कुंडलिनी को भूल जाती है। इससे पार्वती अपार क्रोध से भरकर काली बन जाती है, और सृष्टि को नष्ट करने के लिए तैयार हो जाती है। मतलब कि मन के अखण्ड कुंडलिनी चित्र के नष्ट होने से पार्वती क्रोध से भर जाती है, और घुप्प अंधेरे में डूब जाती है। यह ऐसे ही है जैसे किसी की अतिप्रिय वस्तु गुम हो जाए, या उसे उसके खो जाने का डर

सता जाए, और वह उसके बिना अंधा जैसा हो जाए। यह बच्चे के खिलौने के गम होने के जैसा ही है। ऐसे में आदमी कुछ भी गलत काम कर सकता है, यदि उसे सांत्वना देकर संभाला न जाए। रशियन सत्ताशीर्ष को क्या कहीं ऐसा ही सदमा तो नहीं लगा है। ऐसे में आदमी दुनिया को भी नष्ट कर सकता है, और खुद को भी। क्योंकि शरीर में समस्त ब्रह्मांड बसा है, इसीलिए सम्भवतः पार्वती के द्वारा आत्महत्या के प्रयास को ही सृष्टि के विनाश का प्रयास कहा गया हो। काली नाम का मतलब ही काला या अंधेरा होता है। फिर वह काली बनी पार्वती कहती है कि यदि गणेश को पुनर्जीवित कर दोगे, तो वह प्रसन्न हो जाएगी। बात स्पष्ट है कि खोई हुई प्रिय वस्तु या कुंडलिनी को प्राप्त करके ही आदमी अपनी पूर्व की प्रसन्न अवस्था को प्राप्त करता है। यह तो अब रशियन सत्ताधीश से पूछना चाहिए कि उनकी क्या प्रिय वस्तु खो गई है, जिसके लिए वे परमाणु बटन की तरफ हाथ बढ़ा कर पूरी धरती को दांव पर लगा रहे हैं, और जिसे पाकर वे प्रसन्न हो जाएंगे। मैंने एक पोस्ट में भी कहा था कि आज के उन्नत युग की कुंडलिनी आज्ञा चक्र में अटकी हुई है। कुंडलिनी का स्वभाव ही गति करना होता है। वह एक स्थान पर ज्यादा समय नहीं रह सकती। उसका अगला और उन्नत पड़ाव सहस्रार चक्र है। पर वहाँ तक कुंडलिनी को उठाने के लिए बहुत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता है, जो यौनतन्त्र से ही मिल सकती है। इसीलिए ईश्वरीय प्रेरणा से मैं तन्त्र के बारे में लिखता हूँ। साथ में, भौतिक दुनियादारी को कम करने की भी जरूरत है, ताकि उससे बचाई गई ऊर्जा कुंडलिनी को ऊपर चढ़ाने के काम आ सके। यह युद्ध का विनाश दुनियादारी को कम करने का ही एक अवचेतनात्मक प्रयास है, ताकि कुंडलिनी की ऊर्जा की जरूरत पूरी हो सके। युद्ध के अन्य कारण गिनाए जाना तो बस बहाने मात्र हैं। एक परमाणु हथियार सम्पन्न और क्षेत्रफल के लिहाज से सबसे बड़े देश को भला किससे भय हो सकता है। युद्ध का असली और एकमात्र कारण तो उस बेशकीमती ऊर्जा की कमी है, जिससे आदमी मानवता और आध्यात्मिकता के पथ पर आगे बढ़ता है। समझदार को समझाने के लिए युद्ध का भय दिखाना ही काफी है, नासमझ युद्ध से भी नहीं समझेगा, सिर्फ नुकसान ही होगा। ज्यादा से ज्यादा हल्की सी युद्ध शक्ति दिखा देते, ताकि शत्रु को संभलने और सुधरने का मौका मिलता। फिर दुनिया भी योद्धा की कूटनीति और युद्धनीति की तारीफ करती। यह क्या कि पूरे ही राष्ट्र को नरक बनाने पर तुले हुए हो। एक तरफ गरीबों को सिर ढकने के लिए छत नहीं मिलती, वे रात भर खुले में ठिठुरते हैं, दूसरी तरफ आप आलीशान भवनों को जमींदोज करते जा रहे हो। सोचो, कितना खून पसीना लगा होगा उन्हें बनाने में। उस प्राण ऊर्जा की कितनी बर्बादी हुई होगी उन्हें बनाने में, जिससे कुंडलिनी जागृत हो सकती थी। कुंडलिनी की ऊर्जा की जरूरत पूरी करने का यह अवचेतनात्मक प्रयास अनियंत्रित और अमानवीय है, अनियंत्रित परमाणु ऊर्जा की तरह। इससे क्या है कि कुंडलिनी ऊपर चढ़ने की बजाय नीचे उतर रही है, अपने सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त किए बिना ही। इसलिए दुनियादारी या जीने के तरीकों में बदलाव धीरे-धीरे व मानवीय होना चाहिए, एकदम से व अमानवीय नहीं। मैं यहाँ किसी एक राष्ट्र पर आक्षेप नहीं लगा रहा हूँ। सभी राष्ट्र युद्धपिपासु की तरह व्यवहार करते हैं। दुनिया में सभी देशों के द्वारा ऐसी परिस्थितियां क्यों बनाई जाती हैं, जो किसी देश को मजबूरन युद्ध की तरफ धकेल दे। अधिकांश देश हथियारों का जखीरा इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। हथियारों के व्यापार से पैसा कमाना चाहते हैं। साम्राज्यवाद का सपना पाल कर रखते हैं। इसकी सबसे अच्छी दवाई कुंडलिनी ही है। कुण्डलिनी की सहायता से संपूर्ण सृष्टि अपने अंदर दिखाई देने लगती है। आदमी अपने में ही संतुष्ट रहने लगता है, चाहे वह कैसा भी हो, और कैसी भी परिस्थिति में क्यों न हो। जब किसी राष्ट्राध्यक्ष को अपने अंदर ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड महसूस होगा, तब वह भला क्यों दूसरों की जमीन लूटना चाहेगा। वह अपनी समस्या का हल अपने अंदर ही खोजेगा। फिर उसे अधिकांश मामलों में हथियारों की जरूरत भी नहीं पड़ेगी, और युद्ध की भी नहीं। मैं दुनिया में सिर्फ एक ही देश को जानता हूँ, जिसने भरपूर उकसाओं के बाद भी कभी युद्ध की शुरुआत नहीं की, और न ही किसी के ऊपर आक्रमण किया। वह देश भारत है। सम्भवतः यह भारत में कुण्डलिनी योग और उसपर आधारित धर्म से ही सम्भव हुआ हो। इसलिए समस्त विश्व को भारत से शिक्षा लेनी चाहिए, यदि शांतिपूर्ण विश्व की स्थापना करनी है। मैं किसी की झूठी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। न ही मैं युद्ध के इलावा अन्य पक्षों को देख रहा हूँ। सत्य सत्य है, जिसे कोई झुठला नहीं सकता। खैर, शिव ने अपने गणों को सुबह के समय पूर्व दिशा में भेजा, और कहा कि जो भी जीव सबसे पहले मिले, उसका सिर काट के ले आएं, और गणेश के धड़ से जोड़ दें। मतलब कि कुछ भी सट्टा-बट्टा करना पड़े, पर पार्वती की खोई कुंडलिनी किसी तरह वापिस मिल जाए। गणों को सबसे पहले एक हाथी का बच्चा मिला। उन्होंने शिव की सहायता से उसका सिर गणेश के धड़ से जोड़कर गणेश को पुनर्जीवित कर दिया। उससे देवी पार्वती संतुष्ट हो गई, जिससे उनके कोप से पूरी दुनिया बाल-बाल बच गई।

अध्याय-9

कुंडलिनी के बिना विपश्यना या साक्षीभाव साधना या संन्यास योग करना कठिन व अव्यवहारिक प्रतीत होता है

कर्मयोग

दोस्तों, आजकल मेरे मानस पटल पर गीता के बारे में नित नए रहस्य उजागर हो रहे हैं। दरअसल पूरी गीता एक कुंडलिनी शास्त्र ही है। इसे युद्ध के मैदान में सुनाया गया था, इसीलिए इसमें विस्तार न होकर प्रेक्टिकल बिंदु ही हैं। व्यावहारिकता के कारण ही इसमें एक ही बात कई बार और कई तरीकों से बताई लगती है। मेरा **शरीरविज्ञान दर्शन अब मुझे पूरी तरह गीता पर आधारित लगता है।** हालांकि मैंने इसे स्वतंत्र रूप से, बिना किसी की नकल किए और अपने अनुभव से बनाया था।

कुंडलिनी ही सभी प्रकार की योग साधनाओं व सिद्धियों के मूल में स्थित है

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः। सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥५-७॥
अपने मन को वश में करने वाला, जितेन्द्रिय, विशुद्ध अन्तःकरण वाला और सभी प्राणियों को अपना आत्मरूप मानने वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता है॥7॥
उपरोक्त सभी गुण अद्वैत के साथ स्वयं ही रहते हैं। **अद्वैत कुंडलिनी के साथ रहता है।** इसलिए इस श्लोक के मूल में कुंडलिनी ही है।

आजकल के वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण युग में हरेक आध्यात्मिक उक्ति का वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण दार्शनिक आधार होना जरूरी है

नैव किंचित्करोमीतियुक्तो मन्येत तत्त्ववित्।पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥५-८॥
तत्व को जानने वाला यह माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ । देखते हुए, सुनते हुए, स्पर्श करते हुए, सूँघते हुए, खाते हुए, चलते हुए, सोते हुए, साँस लेते हुए ॥8॥
सीधे तौर पर ऐसा मानना आसान नहीं है कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। ऐसा मानने के लिए कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक आधार तो होना ही चाहिये। ऐसा ही उत्तम आधार शरीरविज्ञान दर्शन ने प्रदान किया है। किसी दिव्य प्रेरणा से इसे बनाने की नींव मैंने तब डाली थी, जब क्षणिक व स्वप्नकालीन आत्मज्ञान के बहकावे में आकर मैं अपने काम से जी चुराने लग गया था। मैं अनायास ही संन्यास योग की तरफ बढ़ा जा रहा था। इससे मैं आसपास के संबंधित लोगों से भौतिक रूप से पिछड़ने लग गया था। इस दर्शन ने मुझे दुनियादारी की तरफ धकेला और मेरे कर्मयोग को सफल किया। इसमें वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध किया गया है कि **जो कुछ भी आदमी कर रहा है, वह सब हमारे शरीर में भी वैसा ही हो रहा है। जब हमारे शरीर में रहने वाले देहपुरुष अपने को कर्ता नहीं मानते तो हम अपने को कर्ता क्यों मानें।** आदमी अपने अवचेतन मन के दायरे में समझे कि उस दार्शनिक पुस्तक के सूक्ष्म रूप की वर्षा हर समय उस पर हो रही है। अवचेतन मन से मैं इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि प्रत्यक्ष या चेतन मन तो दुनियादारी के काम में व्यस्त रहता है, उसे क्यों परेशान करना। उससे त्वरित व चमत्कारिक लाभ होते मैंने स्वयं देखा है। ऐसा चिंतन करते ही आनन्द के साथ कुंडलिनी प्रकट हो जाती है, और आदमी रिलेक्स फील करता है। इसका मतलब है कि इस श्लोक के आधार में भी कुंडलिनी ही है। इससे हम यह भी समझ सकते हैं कि दरअसल आदमी के मन की कुंडलिनी ही कर्ता और भोक्ता है, आदमी खुद नहीं।

यदि शरीरविज्ञान दर्शन के ऐसे चिंतन से मस्तिष्क में दबाव व जड़त्व सा लगे, तो दूसरा तरीका आजमाना चाहिए। इसमें शरीरविज्ञान दर्शन की ओर जरा सा ध्यान दिया जाता है, फिर समयानुसार हरेक परिस्थिति को इसका आशीर्वाद समझ कर स्वीकार कर लेना चाहिए, और प्रसन्न रहना चाहिए।।

सांख्ययोग या संन्यास योग विपासना या विटनेसिंग के समकक्ष है और कर्मयोग कुंडलिनी योग के समकक्ष

संन्यासः कर्मयोगश्चनिःश्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥५-२॥

श्री कृष्ण भगवान कहते हैं- कर्म संन्यास और कर्मयोग- ये दोनों ही परम कल्याण के कराने वाले हैं, पर इन दोनों में भी कर्मयोग कर्म-संन्यास से (करने में सुगम होने के कारण) श्रेष्ठ है॥2॥

कर्मयोग व कुंडलिनी योग, दोनों में कुंडलिनी अधिक प्रभावी होती है। इसमें संसार में परिस्थितियों के अनुसार प्रवृत्त रहते हुए कुंडलिनी को ज्यादा अहमियत दी जाती है। यह श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे दुनियादारी भी अच्छे से चलती है। **बहुत से सर्वोत्तम प्रकार के राजा व प्रशासक कर्मयोगी हुए हैं।** संन्यास योग में विचारों के प्रति साक्षीभाव रखकर उन्हें विलीन किया जाता है। अधिकांशतः बुद्धिस्ट लोग इसी तरीके को अपनाते हैं, इसीलिए वे दुनिया से दूर रहकर मठों आदि में अपना ज्यादातर समय बिताते हैं। कई आधुनिक लोग भी अपनी थकान मिटाने के लिए इस तरीके का अल्पकालिक प्रयोग करते हैं।

यह श्लोक अर्जुन जैसे उन लोगों को देखते हुए बना था, जो अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को छोड़कर साक्षीभाव साधना के नाम पर अकर्मक बनना चाहते थे। इस श्लोक ने ऐसे लोगों की आंख खोल दी। उन्हें इस श्लोक के माध्यम से बताया कि **सबसे ज्यादा आध्यात्मिक लाभ कर्म करने से प्राप्त होता है, ज्ञानसाधना के नाम पर कर्म छोड़ने से नहीं।** ज्ञानसाधना इतनी आसान नहीँ है। हर कोई बुद्ध नहीं बन सकता। यदि ज्ञानसाधना असफल हो जाए तो नरकप्राप्ति की जो बात शास्त्रों में कही गई है, वह सत्य प्रतीत होती है। वैसे तो कर्मयोग असफल नहीं होता। पर यदि किसी कुचक्र से विरले मामले में हो भी जाए तो भी कम से कम स्वर्ग मिलने की संभावना तो है ही, क्योंकि इसमें आदमी ने अच्छे कर्म किए होते हैं।

जो आध्यात्मिक लाभ विटनेसिंग साधना से प्राप्त होता है, वही कुंडलिनी साधना से भी प्राप्त होता है

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानंतद्योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सः पश्यति॥५-५॥
ज्ञानयोगियों द्वारा जो गति प्राप्त की जाती है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त की जाती है इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को (फल से) एक देखता है, वही ठीक देखता है॥5॥
इस श्लोक का मतलब है कि जो मुक्ति संन्यास योग या विपश्यना से मिलती है, वही कर्मयोग या कुंडलिनी योग से भी मिलती है। मुक्ति से यहाँ तात्पर्य बन्धनकारी विचारों से मुक्ति है। केवल यही आभासिक अंतर है कि विपश्यना या विटनेसिंग से वह मुक्ति ज्यादा प्रतीत होती है। क्योंकि **विपश्यना-योगी के अंदर व बाहर, कहीं भी विचारों का तूफान नहीं होता, एक शांत झील की तरह। जबकि कर्मयोगी, समुद्र की तरह बाहर से तूफानी, पर अंदर से शांत होते हैं।** यह श्लोक गीता का सर्वोत्तम श्लोक है। अध्यात्म का सम्पूर्ण रहस्य इसमें छिपा है। इसे मैंने खुद अनुभव किया है। कर्मयोग से ही मैं सांख्ययोग तक पहुंचा। यह अलग बात है कि मैं अब भी कर्मयोग को ही महत्त्व देता हूँ। साधारण लोगों को दोनों प्रकार के योग अलग-अलग दिखाई देते हैं, पर दोनों अंदर से एकसमान है, और एकसमान फल प्रदान करते हैं। कर्मयोग ज्यादा प्रभावी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जो विचारों की आनन्दमयी शून्यता संन्यास योग से प्राप्त होती है, वही कर्मयोग से भी प्राप्त होती है। इन दोनों में कर्मयोग की अतिरिक्त विशेषता यह है कि बेशक इसमें अंदर से मन की आनंदमयी व कुंडलिनीमयी शून्यता हो, पर बाहर से दुनियादारी के सभी काम सर्वोत्तम ढंग से होते रहते हैं। यह समुद्र की प्रकृति से मेल खाता है, बाहर से तूफानी, जबकि अंदर से शांत।

कई लोग कर्मयोग और संन्यास योग, दोनों के मिश्रण का प्रयोग करते हैं। वे काम के मौकों पर कर्मयोग पर ज्यादा ध्यान देते हैं, और काम के अभाव में संन्यास योग पर। मैंने भी इस तरीके को आजमाया था। पर मुझे लगता है कि पूर्ण कर्मयोग ही सर्वश्रेष्ठ है। वास्तव में काम की कमी कभी हो ही नहीँ सकती।

दुनियादारी में उलझे व्यक्ति के लिए विटनेसिंग साधना के बजाय कुंडलिनी साधना करना अधिक आसान है

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः। योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्मनचिरेणाधिगच्छति॥५-६॥
परन्तु हे वीर अर्जुन! कर्मयोग के बिना (कर्म-) संन्यास कठिन है और कर्मयोग में स्थित मुनि परब्रह्म को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥6॥
इस श्लोक का अभिप्राय है कि **जब कर्मयोग या कुंडलिनी योग से कुंडलिनी जागरण हो जाता है, तभी हम विचारों का असली संन्यास कर सकते हैं।** यदि कुन्डलिनी क्रियाशील भी बनी रहे, तो भी काम चल सकता है। कुंडलिनी जागरण दुनियादारी का उच्चतम स्तर है। इससे मन दुनिया से पूरी तरह तृप्त और संतुष्ट हो जाता है। इसलिए इसके बाद विचारों का त्याग करना बहुत आसान या यूँ कह सकते हैं कि स्वचालित या स्वाभाविक ही हो जाता है। इसके बिना, मन दुनिया में ही रमा रहना चाहता है, क्योंकि उसे इसका पूर्ण रस नहीँ मिला होता है। इसीलिए तो बहुत से बौद्ध भिक्षु व अन्य धर्मों के संन्यासी दुनिया से दूर रहकर एकांत में साधना करना अधिक पसंद करते हैं। इसीसे वे अपने मन को दुनिया के प्रलोभन से बचाकर रख पाते हैं। इससे विपश्यना या विटनेसिंग या संन्यास योग या सांख्ययोग के लिए

कुंडलिनी क्रियाशीलता व कुंडलिनी जागरण के महत्त्व का साफ पता चलता है। **विपासना, विपश्यना, विटनेसिंग, साक्षीभाव, संन्यास योग, सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं।**

श्रीमद्भागवत गीता की विस्मयकारी व्यावहारिकता

मुझे लगता है कि गीता के आध्यात्मिक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से अपने दैनिक जीवन में लागू किया जाना चाहिए, अन्यथा मात्र इसे पढ़ने या इसके दैनिक जप करने से कोई विशेष फायदा प्रतीत नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति कर्मयोग के रहस्य को व्यावहारिक रूप से समझता है, तो उसे बहुत ज्यादा पढ़ने की जरूरत नहीं है।

अध्याय-10
बच्चों में कुण्डलिनी

कहते हैं कि बच्चे भगवान् का रूप होते हैं। इसके पीछे बहुत से कारण हैं। परन्तु सबसे प्रमुख व मूल कारण कुण्डलिनी से सम्बंधित है। कुण्डलिनी बच्चों का मूल स्वभाव है। वास्तव में, कुण्डलिनी की खोज बच्चों ने ही की है। बड़ों ने तो उस खोज को केवल कागज़ पर उकेरा ही है। बड़ों ने बच्चों के इस मूल स्वभाव की नक़ल करके बहुत सी मैडिटेशन तकनीकों को ईजाद किया है। बड़ों ने बच्चों के इस मूल स्वभाव की नक़ल करके बहुत सी योग-सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। परन्तु हैरानी की बात यह है कि बच्चों के इस मूल स्वभाव को बहुत कम श्रेय दिया जाता है। अहंकार के आश्रित अधिकाँश लोग सारा श्रेय स्वयं बटोरना चाहते हैं। आज हम इस ब्लॉग पोस्ट के माध्यम से बच्चों को उनका असली हक़ दिलाने की कोशिश करेंगे।

बच्चे स्वभाव से ही अद्वैतवादी होते हैं

बच्चे केवल अनुभव करना जानते हैं। वे अनुभव का पूरा मजा लेते हैं। वे गहराई में नहीं जाते। वे जजमेंट नहीं करते। इसलिए उन्हें सभी कुछ एक जैसा ही प्रतीत होता है। उनकी नजर में लोहा, पत्थर व सोना एकसमान हैं। विपासना साधना के ये मूलभूत गुण हैं। इससे सिद्ध होता है कि बच्चों में स्वयं ही विपासना होती रहती है। विपासना उनका स्वभाव है।

बच्चे स्वभाव से ही कुण्डलिनी प्रेमी होते हैं

यह हम पहले भी विविध प्रमाणों से अनेक बार सिद्ध कर चुके हैं कि विपासना (साक्षी भाव)/अद्वैत व कुण्डलिनी साथ-२ रहते हैं। क्योंकि बच्चे स्वभाव से ही अद्वैतवादी होते हैं, अतः यह स्वयं ही सिद्ध हो जाता है कि बच्चे स्वभाव से ही कुण्डलिनी योगी होते हैं। इसी वजह से ही तो बच्चे किसी एक चीज के दीवाने हो जाते हैं। यदि वे किसी ख़ास खिलौने को पसंद करते हैं, तो रात-दिन उसी के पीछे लग जाते हैं। इसी तरह, यदि बच्चे किसी एक आदमी के दीवाने हो जाते हैं, तो उसी पर अपना सब कुछ लुटाने को तैयार हो जाते हैं। हालांकि इससे वे कई बार बड़ों के धोखे का शिकार भी बन जाते हैं। योग-ऋषि पतंजलि भी तो यही कहते हैं कि “यथाभिमतध्यानात् वा”; अर्थात अपनी किसी भी मनपसंद चीज के निरंतर ध्यान से योग सिद्ध होता है।

सर्वप्रिय वस्तु के रूप में कुण्डलिनी

यही सबसे पसंदीदा चीज ही तो कुण्डलिनी है, जो निरंतर मन में बसी रहती है। एक बात और है। जब बच्चा कोई नयी चीज पसंद करने लगता है, तब वह अपनी पुरानी पसंदीदा चीज को छोड़ देता है। फिर वह उसी एक नयी चीज का दीवाना बन जाता है। वह एक से अधिक चीजों या लोगों से एकसाथ प्यार नहीं कर पाता। कुण्डलिनी योगी का भी यही प्रमुख लक्षण है। योगी भी लम्बे समय तक, यहाँ तक कि जीवनभर भी एक ही चीज का ध्यान करते रहते हैं, जो उनकी कुण्डलिनी बन जाती है।

प्रेम कुण्डलिनी की खुराक के रूप में

प्रेम से कुण्डलिनी को बल मिलता रहता है। तभी तो देखने में आता है कि बच्चे प्रेम की ओर सर्वाधिक आकृष्ट होते हैं।

बच्चों का मोबाईल फोन-प्रेम भी कुण्डलिनी-प्रेम ही है

आजकल बच्चे हर समय मोबाईल फोन से चिपके रहते हैं। यह बच्चों का दोष नहीं है। यह उनका कुण्डलिनी-स्वभाव है, जो उन्हें एक चीज से चिपकाता है। उन्हें अच्छे-बुरे का भी अधिक ज्ञान नहीं होता। इसलिए बच्चों की भलाई के लिए समाज को ऐसी चीजें बनानी चाहिए, जो पूरी तरह से दुष्प्रभाव से मुक्त हों। एक उपाय यह भी है कि बच्चों को प्रेम से ऐसी चीजों के दुष्प्रभाव के बारे में बाताया जाए। उन्हें प्यार से समझाना चाहिए या अपने साथ दूसरे कामों/खेलों/घूमने-फिरने में मित्र की तरह व्यस्त रखना चाहिए। यदि बच्चों के सामने नफरत से भरा हुआ द्वैतभाव प्रकट किया जाएगा, तब तो उनका कुण्डलिनी-गुण नष्ट ही हो जाएगा, और साथ में उनका बचपन भी।

बच्चे मन के भावों को पढ़ लेते हैं

बड़े लोग चाहे जितना मर्जी छुपाने की कोशिश कर लें, बच्चे उनके मन के भाव को पढ़ ही लेते हैं। यह शक्ति कुदरत ने उन्हें आत्मरक्षा के लिए दी है। इसी शक्ति से तो वे किसी आदमी को अच्छी तरह से पहचान कर उसके जी-जान से दीवाने हो जाते हैं, जिससे कुण्डलिनी विकास होता है। वैसे भी बच्चों में कुण्डलिनी आसानी से बन जाती है, क्योंकि उनका दिमाग खाली होता है। तभी तो देखा जाता है कि कई बार अच्छे-खासे घर के बच्चे बिगड़ जाते हैं। वास्तव में, उस घर के लोग बाहर से तो अच्छे होते हैं, पर उनके मन के भाव अच्छे नहीं होते। बच्चे उन मनोभावों से गलत आदतें सीख लेते हैं। इसके उलट, कई बार बुरे घर के बच्चे बहुत अच्छे बनते हैं। वास्तव में, उस घर के लोग बाहर से बुरे प्रतीत होते हैं, पर उनके मन के भाव अच्छे होते हैं। सबसे बेहतर यह है कि मन के अन्दर व बाहर, दोनों स्थानों पर अच्छे बन

कर रहा जाए। यदि अपने काम में उन्हें भी भागीदार बनाया जाए, तो वे स्वयं ही सीख जाते हैं। कई बार वे सीखने-सिखाने के नाम से ही चिढ़ जाते हैं।

बच्चों में कुण्डलिनी सक्रिय होती है, पर वे उसे जागृत नहीं कर पाते

कुण्डलिनी को जागृत करने के लिए बच्चों को कम से कम किशोरावस्था का इन्तजार करना ही पड़ता है। उस आयु में शरीर को यौनशक्ति मिलनी शुरू हो जाती है। यदि उस यौनशक्ति का प्रबंधन सही ढंग से हो जाए, तो वह कुण्डलिनी को मिलने लग जाती है, जिससे कुण्डलिनी आसानी से जाग सकती है। कईयों को दिव्य व अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने से यह काम स्वयं हो जाता है, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ हुआ। कईयों को विशेष प्रयास करना पड़ता है।

प्रेमयोगी वज्र का कुण्डलिनी अनुभव

बचपन में वह कुण्डलिनी के प्रति तो आम बच्चों की तरह ही आकृष्ट होता था। यद्यपि किशोरावस्था में उसे दिव्य व अनुकूल परिस्थितियाँ मिलीं, जिनसे उसकी यौनशक्ति उसकी कुण्डलिनी को मिलती रही। वह यौनशक्ति इतनी अधिक मजबूत थी कि उसकी कुण्डलिनी ने जागृत हुए बिना ही उसे क्षणिक आत्मज्ञान करा दिया। उसके बाद तो वह पूरी तरह से एक बच्चे के जैसा बन गया। हर समय उसके मन में कुण्डलिनी वैसे ही बसी रहती थी, जैसे कि एक बच्चे के मन में कोई खिलौना या विशेष प्रेमी। अधिकाँश लोग उसका मजाक जैसा बनाया करते थे। कई तो कभी-२ दुर्व्यवहार पर भी उतर आते थे। वास्तव में, सभी लोग अपने झूठे अहंकार पर लगी चोट को बर्दाश्त नहीं कर पाते।

दूसरी बार उसने क्षणिक कुण्डलिनी जागरण को कृत्रिम योग तकनीक से प्राप्त किया, कुछ यौनयोग की सहायता लेकर। यह सारा वृत्तांत हिंदी में बनी पुस्तक “शरीरविज्ञान दर्शन” में, व अंग्रेजी में लिखी पुस्तक “love story of a Yogi” में वर्णित है, जो इस वैबसाईट के पेज “शॉप” पर उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त, यदि कोई कुण्डलिनी प्रेमी इस वैबसाईट की सभी कुण्डलिनी से सम्बंधित ब्लॉग पोस्टों को किनडल ईबुक के रूप में आसानी से व एकसाथ पढ़ना चाहे, तो सभी का संग्रह भी पुस्तक रूप में इसी वैबपेज पर उपलब्ध है। उसके हिंदी-रूप का नाम “कुण्डलिनी विज्ञान-एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान” व अंग्रेजी-रूप का नाम “kundalini science- a spiritual psychology” है।

अध्याय-11
पहाड़ों में कुण्डलिनी

मित्रो, पहाड़ों का अपना एक अलग ही आकर्षण है। वहां पर मन प्रफुल्लित, साफ, हल्का, शांत व आनंदित हो जाता है। पुराना जीवन रंग-बिरंगे विचारों के रूप में मस्तिष्क में उमड़ने लगता है, जिससे बड़ा ही आनंद महसूस होता है। चिंता, अवसाद व तनाव दूर होने लगते हैं। गत जीवन के मानसिक जख्म भरने लगते हैं। प्रेमयोगी वज्र को भी अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों के कारण कुछ वर्षों तक ऊंचे पहाड़ों में रहने का मौक़ा मिला था। उसे वहां के लोगों से व प्राकृतिक परिवेश से भरपूर प्यार, सहयोग व सम्मान मिला।

पहाड़ों में अपने आप विपासना साधना होती रहती है

उपरोक्त तथ्यों से जाहिर है कि पहाड़ों में विपासना के लिए सर्वाधिक अनुकूल परिस्थितियाँ मौजूद होती हैं। यदि आदमी योग आदि के माध्यम से अपना बल भी लगाए, तब तो शीघ्र ही आध्यात्मिक सफलता मिलती है। प्रेमयोगी वज्र को भी उपरोक्त मानसिक सद्प्रभावों का अनुभव पहाड़ों के इसी गुण के कारण हुआ।

कुण्डलिनी ही पहाड़ों में स्वयम्भूत विपासना को पैदा करती है

आश्चर्य की बात है कि प्रेमयोगी वज्र की मानसिक कुण्डलिनी, जो पहले दब जैसी गई थी, वह पहाड़ों में बहुत मजबूत हो गई थी। वह तांत्रिक कुण्डलिनी थी, और उसकी मानसिक प्रेमिका के रूप में थी। उसके साथ ही उसकी मानसिक गुरु के रूप वाली कुण्डलिनी भी वहां पर ज्यादा चमकदार बन गई थी। पर उसने देखा कि पहाड़ों के लोग प्रेमिका के रूप वाली कुण्डलिनी को बहुत ज्यादा महत्त्व दे रहे थे, गुरु के रूप वाली कुण्डलिनी की अपेक्षा। गुरु के रूप वाली कुण्डलिनी को वहां के पंडित वर्ग के आध्यात्मिक लोग ज्यादा महत्त्व दे रहे थे, यद्यपि प्रेमिका की कुण्डलिनी के साथ ही, अकेली गुरु के रूप वाली कुण्डलिनी को नहीं। इसका कारण यह है कि पहाड़ मन के काम-रस या श्रृंगार-रस को उत्तेजित करते हैं। इसी वजह से तो काम शास्त्रों में ऊंचे पहाड़ों का सुन्दर वर्णन बहुतायत में पाया जाता है। उदाहरण के लिए विश्वप्रसिद्ध साहित्यिक रचना “मेघदूत”।

दूसरा प्रमाण यह है कि मैदानी भागों में कुण्डलिनी योग साधना के बाद जब प्रेमयोगी वज्र पर्वत-भ्रमण पर गया, तब पहाड़ों में उसकी कुण्डलिनी प्रचंड होकर जागृत हो गई, जैसा कि इस वैबसाईट के “गृह-2” वैबपेज पर वर्णित किया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रेमयोगी वज्र को क्षणिक आत्मज्ञान का अनुभव भी पहाड़ों में ही हुआ था, जो उसने इस वैबसाईट के “गृह-2” वेबपेज पर वर्णित किया है । इसी वजह से तो अनादिकाल से लेकर योग साधक शीघ्र सिद्धि के लिए मैदानों से पहाड़ों की तरफ पलायन करते आए हैं।

पहाड़ों में कुण्डलिनी क्यों चमकने लगती है?

वास्तव में, पहाड़ देवता की मूर्ति की तरह काम करते हैं। तभी तो कई धर्मों में पहाड़ को देवता माना गया है। एक प्रकार से देवता की मूर्ति पहाड़ के रूप में प्रतिक्षण आँखों के सामने विद्यमान रहती है। पहाड़ मैं विद्यमान अद्वैत तत्त्व आदमी के मन में भी अद्वैतभाव पैदा कर देता है। उस अद्वैत के प्रभाव से कुण्डलिनी मन-मंदिर में छा जाती है।

यदि किसी के मन में कुण्डलिनी न भी हो, तो भी अद्वैतभाव से बहुत से आध्यात्मिक लाभ मिलते हैं। साथ में, उससे धीरे-२ कुण्डलिनी भी बनना शुरू हो जाती है।

यह बात इस वैबसाईट में पहले भी सिद्ध की जा चुकी है कि सृष्टि के कण-कण में अद्वैत तत्त्व विद्यमान है। वास्तव में, वही भगवान् है। इसे समझने के लिए सबसे बढ़िया पुस्तक “शरीरविज्ञान दर्शन” है।

अध्याय-12
कुण्डलिनी से विपासना या विपश्यना

विपश्यना क्या है

क्वोरा पर बहुत से लोग विपासना के बारे में प्रश्न पूछते रहते हैं। इसलिए सोचा कि क्यों न इस बार विपासना पर ही एक सुन्दर ब्लॉग-पोस्ट लिख लूं।

विपश्यना का अर्थ है विशेष पश्यना अर्थात एक विशेष प्रकार की नजर। सामान्य नजर तो वही बहिर्मुखी नजर है, जिससे हम-आप सभी लोग देखते हैं। विशेष नजर अंतर्मुखी नजर है, जिससे अपने अन्दर मौजूद विचारों-भावों को देखा जाता है। सामान्य नजर में द्रष्टा का साक्षी भाव नहीं होता, परन्तु विपश्यना में द्रष्टा का साक्षीभाव होता है। सामान्य नजर से बंधन होता है, जबकि विपश्यना से मुक्ति प्राप्त होती है। सामान्य नजर से असली सुख नहीं मिलता, जबकि विपश्यना से असली सुख मिलता है। सामान्य नजर से असली शान्ति नहीं मिलती, जबकि विपश्यना से असली शान्ति मिलती है। यद्यपि यह बात ध्यान रखने योग्य है की विपश्यना का आधार सामान्य नजर ही है, क्योंकि सामान्य नजर से ही मन में वह ढेर सारी सूक्ष्म सामग्री इकट्ठी हो पाती है, जिसके प्रति हम विपश्यना की विशेष नजर को केन्द्रित कर पाते हैं। इसलिए सामान्य नजर का भी अपना अलग महत्त्व है। तभी तो कहा जाता है कि विज्ञान के बिना अध्यात्म लंगड़ा है, तथा अध्यात्म के बिना विज्ञान अंधा है। इसलिए जीवन में विज्ञान व अध्यात्म, दोनों का समुचित मिश्रण होना चाहिए।

विपश्यना से साधना-लाभ कैसे मिलता है

जब हम मन के विचारों-भावों के प्रति अनासक्त हो जाते हैं, तब उससे यह अर्थ निकलता है कि जो कुछ विचारों-भावों से हासिल होता है, वह हमारे अपने पास पहले से ही तो है। अपने विचारों-भावों के इलावा हमारे पास अपना स्वयं का निरपेक्ष रूप/आत्मा ही तो है। अतः विचारों-भावों के सभी गुण आत्मा में उजागर होने लगते हैं, जैसे कि प्रकाश, आनंद, शान्ति आदि। वास्तव में, वे गुण आत्मा में पहले से ही विद्यमान होते हैं, परन्तु भौतिक व मानसिक दुनिया के प्रति आसक्ति के कारण दबे होते हैं। आत्मा के इसी शुद्धीकरण को "भ्रम के काले बादलों का छंटना" या "अज्ञान के काले परदे का हटना" आदि नामों से भी जाना जाता है।

आत्मा के ऊपर से अज्ञान के काले बादल का हटना

हालांकि ऐसा प्रतीत नहीं होता कि आत्मा धीरे-२ साफ हो रही है, जैसे कि रात का अँधेरा सुबह के साथ-२ धीरे-२ साफ होता है। नगण्य मात्रा में आत्मा की सफाई हो भी सकती है (जो प्रत्यक्ष तौर पर नजर नहीं आती), जिससे अद्वैत व शान्ति का अनुभव होता है, पर यह क्षणिक/अस्थायी होती है। सच्चाई यह है कि अचानक ही घुप अन्धकार से भरी आत्मा में प्रकाश छा जाता है, जैसे कि अँधेरे कमरे में प्रकाश बल्ब का स्विच ऑन करने से छा जाता है। वास्तव में सफाई तो मन की होती है, आत्मा की नहीं। आत्मा तो हमेशा साफ है। जब मन पूरी तरह से साफ हो जाता है, या यूं कहो कि मन विचारों के कचरे से रहित हो जाता है, तभी आत्मा के ऊपर पड़ा हुआ काला पर्दा अचानक से हट जाता है। आम आदमी यह देखकर हतोत्साहित हो जाता है कि उसकी आत्मा तो साफ ही नहीं हो रही है। इससे वह साधना के प्रयास को छोड़ देता है।

आम इंसान को एक अन्य गलतफहमी यह होती है कि व्यक्त रूप में ही मन के विचार आत्मा पर पर्दा डालते हैं, अव्यक्त या संस्कार रूप में नहीं। तभी तो अधिकाँश लोग अपने विचारों को बलपूर्वक दबाकर इस भ्रम में रहते हैं कि वे योगी हैं। वास्तव में मन के विचार (आसक्ति के साथ) बड़े दुष्ट होते हैं। ये अपनी सुप्त अवस्था में भी आत्मा को अँधेरे से ढक कर रखते हैं। तभी तो विभिन्न साधनाओं से इन दबे हुए विचारों को उघाड़ कर नष्ट करना पड़ता है। विपासना से यह काम सबसे आसानी से होता है। तभी तो सरल विपासना से सीधे ही, बिना किसी अन्य साधना के आत्मज्ञान हो सकता है, जैसे बुद्ध को हुआ। यह अलग आत है कि आम सांसारिक जीवन में कुण्डलिनी के बिना ऐसा होना संभव प्रतीत नहीं होता।

विपश्यना के प्रकार व उसके लिए सहयोगी कारक

विपश्यना दो प्रकार की है, ऐक्टिव (सक्रिय) और पैसिव (निष्क्रिय)। ऐक्टिव विपश्यना में मन को जिस मानसिक खूंटे (ऐंकर) से बांधा जाता है, वह बलपूर्वक निर्मित किया जाता है। उससे मन हर समय उस खूंटे से चिपका रहता है। उससे मन अपने अन्दर उमड़ने वाले विचारों-भावों की तरफ गहराई से ध्यान नहीं दे पाता, जिससे उसका उनके प्रति अनासक्ति के साथ साक्षीभाव बना रहता है। मन्त्र-जाप, माला-जाप, साँसें, कुण्डलिनी, जप-तप, उपवास, तथा अन्य सभी आध्यात्मिक गतिविधियाँ इसी खूंटे का काम करती हैं।

पैसिव विपश्यना में रोजमर्रा के क्रियाकलापों के दौरान स्वयं ही मन के लिए खूंटा निर्मित होता रहता है। उदाहरण के लिए, ड्राईविंग के दौरान मन सड़क पर लगा होता है, इसलिए उस दौरान उमड़ रहे विचारों-भावों के प्रति स्वयं ही विपश्यना होती रहती है। इसी तरह, अन्य साहसिक गतिविधियों, खेलों, स्पर्धाओं, कलाओं, विद्याओं आदि के दौरान भी होता है। इन गतिविधियों के साथ जितनी अधिक विपश्यना होती है, उतनी ही अधिक उनकी गुणवत्ता मानी जाती है। इनके साथ विपश्यना की मात्रा ही इनकी गुणवत्ता की मात्रा की सूचक हैं। प्रतिभागी की यह विपश्यना साथ रहने वाले लोगों, दर्शकों में भी इंडयूस होती रहती है।

कुण्डलिनी से विपश्यना

कुण्डलिनी (मन में स्थायी रूप से बसने वाली एकाकी छवि) विपश्यना के लिए सर्वोत्तम खूंटा है। यह मानसिक खूंटा ढीला होता रहता है, अतः प्रतिदिन के कुण्डलिनी-योग से इसे मजबूती देते रहना चाहिए।

कुण्डलिनी की सहायता से निष्क्रिय विपश्यना सर्वाधिक प्रभावशाली

प्रेमयोगी वज्र के अन्दर स्वयं ही तांत्रिक कुण्डलिनी चिपक गई थी। वह बहुत मजबूत व स्पष्ट थी। वह लगातार बनी रहती थी। वह एक आकर्षक मानसिक प्रेमिका (तांत्रिक गुरु की संगति में) के रूप में थी। वह मन के लिए एक सर्वाधिक शक्तिशाली खूंटा बनी। अपनी आकर्षकता के कारण, वह मानसिक खूंटे के साथ मानसिक वीडियो प्लेयर का काम भी कर रही थी। उससे प्रेमयोगी वज्र के मन में अपने पिछले जीवन की घटनाएं रंग-बिरंगे चित्रों के रूप में उमड़ रही थीं। सभी चित्र उस आकर्षक खूंटे के सामने फीके पड़ गए थे। सभी के प्रति स्वयं ही विपश्यना हो रही थी, जिससे वे तेजी से आत्मा में विलीन हो रहे थे। उससे उसका आत्मा बहुत तेजी से शुद्ध हो रहा था। अंततः दो साल के भीतर ही वह शून्य जैसा हो गया। अंत में, दिव्य परिस्थितियों के कारण उसका वह अंतिम विचार-रूपी मानसिक खूंटा भी उखड़ गया, जिससे उसे क्षणिक आत्मज्ञान की झलक मिली। इस घटना का विस्तृत वर्णन उसकी हिंदी में पुस्तक "शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)" व अंग्रेजी में पुस्तक "Love story of a Yogi- what Patanjali says" में किया गया है।

इससे सिद्ध होता है कि मानसिक खूंटे का आकर्षक होना भी आवश्यक है, ताकि वह मन की गहराइयों में दबे पड़े विचारों-भावों के स्पष्ट चित्रों को उघाड़ता रहे, और वे सभी उसके आगे फीके पड़ने लगे। कुण्डलिनी (विशेषतः तांत्रिक कुण्डलिनी) सबसे अधिक आकर्षक होती है, इसलिए विपश्यना के लिए कुण्डलिनी एक सर्वोत्तम मानसिक खूंटा है। निरंतर ध्यान के साथ इसका आकर्षण बढ़ता ही जाता है। जब सभी कुछ शून्यप्राय हो जाता है, तब आत्मज्ञान के लिए अंतिम छलांग के रूप में उस अंतिम मानसिक खूंटे को भी त्यागना पड़ता है। इसी मूलभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के आधार पर ही लाखों पुस्तकें व साधनाएं बनी हैं।

अध्याय-13

कुंडलिनी चिंतन ~ गुप्त रहस्य जो अक्सर नजरअंदाज किए जाते हैं

*इस पोस्ट में मुख्यतः शिवबिन्दु-ध्यान, स्नान-ध्यान, विपासना से कुंडलिनी बेहतर, कुंडलिनी जागरण की गोपनीयता, सर्वोत्तम जागृति, मूलाधार में कुण्डलिनी निवास, प्राण-ऊर्जा संचरण का अनुभव, असली याद, हठयोग राजयोग के सहयोगी के रूप में, साँस रोकना, सुषुम्ना में ऊर्जा-संचरण, तांत्रिक शब्दों की गोपनीयता, व महामानव का वर्*णन है।

दोस्तो, पिछले हफ्ते मुझे कुछ राईटर ब्लॉक महसूस हुआ। कुछ लिखने को मन नहीं किया। थोड़ा-बहुत लिख पाया, तो उसे पोस्ट के रूप में संकलित नहीं कर पाया। इस पोस्ट में वे मन में बिखरे अनुभवात्मक विचार इकट्ठे हुए। फिर सभी रहस्यात्मक विचारों के कीवर्ड्स को मिलाकर एक सबटाइटल बनाया।

जब मन में आई कुंडलिनी को शिवबिन्दु का रूप दिया जाता है तब पीठ से चढ़ती ऊर्जा के अनुभव के साथ आज्ञा चक्र पर खुद ही संकुचन बनता है। इससे मस्तिष्क में कुंडलिनी सीधी होकर सहस्रार से आज्ञा चक्र तक सीधी रेखा में फैल जाती है। हमारी इतनी छोटी औकात है कि हम शिव के बिंदु का ही चिंतन कर सकते हैं, अन्य कुछ नहीं। शिव तो बहुत दूर हैं। वो सबसे बड़े हैं। वो साक्षात पूर्ण ब्रह्म हैं। शिव बिंदु ही हमें शिव तक ले जाएगा।

बाहर से सभी शिव की नकल करना चाहते हैं पर अंदर से कोई नहीं करता। वे अंदर से कुंडलिनी के ध्यान में मग्न रहते हैं। इसलिए उनकी असली नकल तभी होगी जब किसी का ध्यान होता रहेगा, बेशक उन्हींके रूप की कुंडलिनी का।

नहाते समय ऊर्जा की गश या थ्रिल बड़ी अच्छी अनुभव होती है। यह मस्तिष्क में बड़ी अच्छी महसूस होती है। इससे ताजगी और माइंडफुलनेस का एहसास होता है। इसीलिए रोज नहाने की सलाह दी जाती है, और नहाते समय मंत्रोच्चार के लिए बोला जाता है, ताकि मन में कुंडलिनी प्रभावी रहे, और ऊर्जा का लाभ कुंडलिनी को मिल सके। शायद यह थ्रिल तभी ज्यादा और अनुभव लायक होती है, अगर प्रतिदिन योग अभ्यास किया जाता रहे। योगाभ्यास के समय बेशक ऊर्जा की थरथराहट महसूस न होए, पर इससे ऊर्जा ढंग से एलाइन हो जाती है, जिससे दिन में कभी भी उपयुक्त माहौल मिलने पर एनर्जी सर्ज महसूस हो सकती है, जैसे कि नहाते समय। यही वजह है कि शौच और स्नान के बाद योग करना अधिक प्रभावशाली माना जाता है।

विपासना से मन के विचारों की शक्ति बनी रहती है। जिन विचारों के प्रति साक्षीभाव रखा जाता है, वे तो कुछ समय के लिए दब जाते हैं, पर साक्षीविचार का भाव हटते ही वही या दूसरे विचार दुगुनी शक्ति से कौंधते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमने विचारों को तो कुंद कर दिया होता है, पर विचारों की शक्ति कम होने की बजाय बढ़ती है। वह इसलिए क्योंकि विचारों की शक्ति खर्च होने पर रोक लगती है। साथ में एक विशेष चित्र भी मन में नहीं बनाया होता है, जो लगातार फालतू विचारों की शक्ति को सोखता रहे। इसके विपरीत, कुंडलिनी ध्यान में विचारों की शक्ति पर रोक नहीं लगती, पर उसे विचारों से हटा कर कुंडलिनी पर लगाया जाता है। इससे लंबे समय तक विचारों से छुटकारा मिलता है। यदि विचार आने भी लगे तो उनकी शक्ति कुंडलिनी को लगती है, और वे शांत हो जाते हैं, क्योंकि हमें वैसा करने की आदत होती है। कुंडलिनी के साथ विपासना से तो ऐसा ज्यादा होता है, क्योंकि दो प्रकार से एकसाथ साधना होती है। पर कुंडलिनी के बिना विपासना तो बहुत कमजोर और अस्थायी तरीका प्रतीत होता है। इसीलिए कुंडलिनी को अध्यात्म का मूलभूत आधार कहते हैं।

मैं बता रहा था कि वह जागृति सर्वोत्तम है जो कुंडलिनी से शुरु हो। इसकी एक और वजह है। इससे कुंडलनी योग पूरी तरह वैज्ञानिक बन जाता है, और अपने नियंत्रण में आ जाता है। आदमी को पता लग जाता है कि हम अपने प्रयासों से भी जागृति प्राप्त कर सकते हैं, केवल संयोग से ही नहीं। इससे आदमी औरों को भी यह तरीका सिखा सकता है, जिससे बड़े पैमाने पर जागृति संभव हो सकती है। दुर्लभता से होने वाले संयोग से तो सभी को जागृति नहीं मिल सकती न। संयोग से होने वाली जागृति तो बिना प्रयास के ही होती है ज्यादातर। अगर प्रयास हो भी तो वह सामान्य व हल्का प्रयास होता है, जैसे कि अद्वैत व अनासक्ति से भरा हुआ जीवन, व अन्य आध्यात्मिक क्रियाकलाप। वह प्रयास कुंडलनी योग जैसा वैज्ञानिक, मजबूत व समर्पित प्रयास नहीं होता। जिसको संयोगवश जागरण मिला हो, वह खुद भी उसे अपने प्रयास से दुबारा प्राप्त करना नहीं जानता, औरों को क्या समझाएगा। बेशक जिसने कुंडलनी योग के प्रयास से खुद कुंडलिनी जागरण प्राप्त किया हो, वह उस प्रयास से उसे दुबारा प्राप्त करने के बारे में कई बार सोचेगा, क्योंकि इसमें सुनियोजित ढंग से बहुत मेहनत करनी पड़ती है। पर कम से कम उसे तरीके का तो पता है, जिससे वह औरों का खासकर होनहार, जिज्ञासु, और शक्तिपूर्ण प्रकार के सुयोग्य लोगों का मार्गदर्शन कर सकता है।

अद्वैत के साथ लौकिक कर्मों से मूलाधार क्रियाशील होता है। यह इसलिए होता है क्योंकि अद्वैत से मन में जो कुंडलिनी बनती है, उसके लिए मूलाधार से एनर्जी की सप्लाई शुरु हो जाती है, क्योंकि वह कुंडलिनी के लिए जरूरी होती है। कुंडलिनी के इलावा जो भी मस्तिष्क के काम हैं उनके लिए तो मस्तिष्क की अपनी ऊर्जा बहुत होती है, मूलाधार की अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसीलिए तो कहा जाता है कि कुंडलिनी मूलाधार चक्र में निवास करती है। द्वैतवादियों का मूलाधार इसीलिए सक्रिय नहीं होता, क्योंकि उनमें कुंडलिनी ही नहीं होती, अगर पिछले जन्म के प्रभाव से होती है तो बहुत कमजोर या नाममात्र की।

पीठ से मस्तिष्क को जाती हुई गश या थ्रिल हमेशा महसूस नहीं होती। जब मस्तिष्क को ऊर्जा की ज्यादा जरूरत हो, तभी महसूस होती है। मेरा आजकल रूपांतरण का दौर चल रहा है। इस दौर में मस्तिष्क में नए न्यूरोनल कनेक्शन बनते हैं और पुराने टूटते हैं। मतलब पिछली यादें मिटती हैं, और नई बनती हैं। इसके लिए मस्तिष्क को बहुत ऊर्जा चाहिए होती है। जब मेरे अंदर पुराना जीवन हावी होने लगता है, तब यह थ्रिल बड़ी जोरदार व आनन्द वाली महसूस होती है। एक बच्चे की तरह एकदम ताजगी और नयापन सा महसूस होता है। पर आप योगा करते रहिए, क्योंकि बिना महसूस हुए भी योग से ऊर्जा ऊपर चढ़ती रहती है। आपके ऊपर भी जब कभी भावनाओं का दबाव ज्यादा होगा, तब यह थ्रिल महसूस होगा। रचनात्मक या नया काम होगा, तो भी एनर्जी थ्रिल बढ़ेगा। कुंडलनी साधना को शक्ति साधना के साथ जोड़कर करना चाहिए। तभी दोनों सहस्रार में एकसाथ जुड़ पाते हैं, अन्यथा शंका है।

योग करते हुए यदि कोई क्रिएटिव विचार आए तो उसे मन में ही रहने दो, उसे नोट करने या एनालाइज करने न लगो, इससे कुंडलनी ऊर्जा की गति में बाधा पहुंच सकती है। पर यदि क्रिएटिव विचार बहुत जरूरी हो, और आप उसे बाद में भूल सकते हो, तो नोट कर भी सकते हो।

यह जो कुंडलिनी को छिपाने की प्रथा थी, वह मुझे असफल लोगों द्वारा अपनी शर्मिंदगी से बचने के लिए बढ़ाई गई लगती है। हर किसी को अपना अहंकार प्यारा होता है। यदि कोई महान साधक या गुरु कुण्डलिनी जागरण न प्राप्त कर पाए, पर उसका एक निम्न और दुश्मन पड़ौसी कर दे, तो उसके लिए शर्म के कारण सच्चाई को बर्दाश्त करना मुश्किल तो होगा ही न। दूसरी वजह यह भी रही होगी कि कहीं तथाकथित निम्न बिरादरी के आदमी को सम्मान या श्रेय न देना पड़ जाए। क्योंकि यदि ऐसे तथाकथित नीच की कुंडलिनी जागृत हो जाए, तो सामाजिक दबाव के आगे झुकते हुए उसे अपेक्षित सम्मान व श्रेय देना पड़ेगा। इसलिए तथाकथित विद्वान वर्ग ने समाज में यह भ्रम फैला दिया होगा कि अपने कुंडलिनी जागरण को किसीके सामने प्रकट नहीं करना चाहिए, ताकि न बांस रहे और न ही बजे बाँसुरी।

जब साँस रोककर योगासन करते हैं तो शरीर की खुद ही ऊर्जा को घुमाने की इंस्टिंक्ट शुरु हो जाती है ताकि पूरे शरीर को ऑक्सीजन पर्याप्त मिल सके। हाँ, यह भी एक वजह है। दूसरी वजह मैंने पहले भी बताई थी कि साँस भरकर रोकने से ऊर्जा की गति की दिशा खुद ही ऊपर की तरफ रहती है।

जागरण और कुंडलिनी जागरण में कोई अंतर नहीं है। दोनों में पूर्ण आत्मा की अनुभूति होती है। कुंडलिनी जागरण में वह अनुभूति कुंडलिनी के माध्यम से कुंडलिनी से शुरु होती है। दूसरे किस्म का जागरण विपासना से, सदमे से आदि से हो सकता है। यह मुश्किल होता है। क्योंकि मन को शून्य करना पड़ता है। कुंडलिनी वाला जागरण आसान होता है, क्योंकि इसमें मन को शून्य करने की जरूरत नहीं होती। इसमें कुंडलिनी को ही इतना मजबूत बना दिया जाता है कि वह आत्मा के साथ जुड़कर उसे प्रकट कर देती है। वैसे भी दुनिया में रहकर कुंडलिनी वाला तरीका ही सर्वोत्तम है, क्योंकि दुनिया में आदमी का झुकाव प्रवृत्ति की तरफ ही तो होता है, निवृत्ति की तरफ नहीं।

संस्कृत पुराणों के हिंदी अनुवाद में निजी या अंतरंग ज्ञान छुपाया होता है। इसका मतलब है कि संस्कृत भाषा ज्यादा परिपक्व है। संस्कृत में स्पष्ट रूप से रेताः लिखा है शिवपुराण में, जिसे हिंदी अनुवाद में कामवासना लिखा गया है। वैसे इसका मतलब वीर्य होता है। रेताश्चतुर्बिंदुः, मतलब वीर्य की 4 बूंदें। आजकल हरेक किस्म का ज्ञान इंटरनेट पर उपलब्ध है। इसलिए कुण्डलिनी ज्ञान को भी गुप्त रखने की जरूरत नहीं है। यदि इसको गुप्त रखा गया, तो लोग इधर-उधर का भड़काऊ ज्ञान इकट्ठा करते हुए अपना नुकसान ही करेंगे।

लोग बोलते हैं कि पुरानी याद सताती है। दरअसल वह ऊपर-ऊपर की होती है। वह असली याद नहीं होती। यह बाहर-बाहर की व आसक्तिपूर्ण याद होती है। असली याद तो भावों की होती है। उसमें आसक्ति नहीं होती। यह गहन चिंतन के अभ्यास या ध्यान योग के अभ्यास से उत्पन्न होती है।

राजयोग के बिना हठयोग बहुत कम प्रभावी है। पहले मन में कुण्डलिनी राजयोग या साधारण ध्यान से परिपक्व हो जाए, तभी उसको अतिरिक्त बल देने के लिए हठयोग की जरूरत पड़ेगी। यदि पहले से कुण्डलिनी नहीं होगी, तो हठयोग से कुण्डलिनी केवल सतही रूप में ही अभिव्यक्त हो पाएगी, उसे अतिरिक्त बल नहीं मिल पाएगा। जागरण तो ध्यान चित्र का ही होता है। उच्चतम ध्यान को ही जागरण कहते हैं। इसे कुंडलिनी नाम इसको यौन ऊर्जा से जोड़ने से मिला है। यौन ऊर्जा मूलाधार चक्र में रहती है। यह ऊर्जा वहीँ उत्पन्न होकर वहीं पर नष्ट भी होती रहती है। इसीको

नागिन के द्वारा अपनी पूंछ को मुंह में दबाना कहते हैं। मतलब कि नागिन की पूंछ से उत्पन्न ऊर्जा (वज्रशिखा पर उत्पन्न सूक्ष्म बिंदु-ऊर्जा) चलकर उसके मुंह में पहुंचती है, जिसको वह पूँछ के पास ही उगल भी देती है। यह वीर्य उत्सर्जन की तरह है। यह नागिन एक नाड़ी है जो अढ़ाई चक्कर पूरे करके कुंडली सी लगाई होती है। यह अढाई चक्कर का रहस्य जब पूरा और ढंग से समझ लूँगा, तब आपको बताऊंगा। वैसे जब आगे के और पीछे के स्वाधिष्ठान चक्रों को जोड़ने वाले घेरे का ध्यान साथ में किया जाता है, तो कुंडलिनी ऊर्जा सुषुम्ना में ज्यादा अच्छी तरह से चढ़ती है। यह अढ़ाई का फेर भी समझ ही लूंगा। इसीलिए इसमें बह रही ऊर्जा और ध्यान चित्र के मेल को ही कुंडलिनी कहते हैं। कुंडलिनी बनने से नागिन की कुण्डलिनी खुलकर वह ऊपर की ओर खड़ी होने लगती है। मतलब टॉप (मस्तिष्क) और बॉटम (मूलाधार) एक हो जाते हैं। इसका अर्थ है, प्राण ऊर्जा को मूलाधार से ऊपर सुषुम्ना के रास्ते से सहस्रार तक ले जाना। यह एक प्रकार से बिंदु संरक्षण ही है।

मानव मस्तिष्क के ऊपर चेतना विकास का भौतिक माध्यम कुछ नहीं है। फिर तो आत्मा ही है, अनंत चेतना का भंडार। ये जो फिल्मों, उपन्यासों या कॉमिक्स में महामानव दिखाए जाते हैं, ये दरअसल कुंडलिनीजागरण से युक्त व्यक्ति के ही भौतिक विकल्प हैं। क्योंकि कुंडलिनी शक्ति को भौतिक रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, इसलिए ऐसे महामानवों को कल्पित करना पड़ता है। ऐसा आज ही नहीं, पहले भी होता था। उदाहरण के लिए, हनुमान, नारद, भीम जैसे पौराणिक चरित्र कुंडलिनी-महामानव का भौतिक अभिव्यक्तिकरण ही तो है।

यह जो आता है कि प्राण ऊर्जा के सुषुम्ना में चलने के समय ही कुंडलिनी जागरण होता है, यह सही है। उसमें प्राण से बायाँ और दायाँ मस्तिष्क, दोनों बराबर सक्रिय हो जाते हैं। बाएँ मस्तिष्क से सांसारिक कर्म होते हैं, और दाएं से शून्य पर नजर रहती है। दोनों के योग से शक्तिशाली अद्वैत पैदा होता है। उससे कुंडलिनी तेजी से अभिव्यक्त होती है। सुषुम्ना में तो बीच-बीच में प्राण चलता ही रहता है। उससे अद्वैत व कुण्डलिनी का आभास होता रहता है। जागरण तो तभी होता है जब इसे साथ में तांत्रिक यौनबल भी मिलता है। इसमें पूरा मस्तिष्क एकसमान कम्पायमान हो जाता है।

कई लोगों को कुंडलिनी ऊर्जा शरीर में इधर-उधर अटकी हुई महसूस होती है, जैसे कि कंधों में आदि में। इससे उन्हें बेचैनी महसूस होती है। दरअसल यह पीठ में इड़ा या पिंगला नाड़ी से ऊर्जा के चढ़ने से होता है। बाएँ भाग व बाएँ कंधे से इड़ा और दाएँ कंधे से पिंगला गुजरती है। ऊर्जा को नहीँ छेड़ना चाहिए। जहाँ जाती हो, वहाँ जाने दो। यह ऊर्जा की कमी से जूझ रहे भाग की ऊर्जा की जरूरत पूरी करके फिर से केंद्रीय नाड़ी में आकर घूमने लगती है। इसमें जल्दी लाने के लिए आज्ञा चक्र, तालु से जीभ के स्पर्श, स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार संकुचन का एकसाथ ध्यान करना चाहिए या इनमें से जितने बिंदुओं का हो सके, ध्यान करते रहना चाहिए। एक बिंदु से दूसरे बिंदु को भी ध्यान स्थानांतरित करते रह सकते हैं, सुविधा के अनुसार। दरअसल ये पॉइंटस कुंडलिनी के मार्ग के रूप में सीधी रेखा बनाने के लिए एक फुट रूलर का काम करते हैं। साथ में, कुंडलिनी ऊर्जा पर भी ध्यान बना रहना चाहिए। घूमती हुई कुंडलिनी ऊर्जा ही अच्छी होती है, एक जगह पर खड़ी नहीं।

यह जो योग से वजन घटता है, उसकी मुख्य वजह कुंडलिनी ध्यान ही है, न कि भौतिक व्यायाम। टाँगों आदि को मोड़कर रखने से तो बहुत कम ऊर्जा खर्च होती है। चक्र पर कुंडलिनी ध्यान से पैदा हुई मांसपेशियों की सिकुड़न से ही शरीर की अतिरिक्त जमा चर्बी घुलती है, जिससे वजन घटता है। अभ्यास हो जाने पर तो यह कुंडलिनी सिकुड़न दिनभर बनने लगती है।

गले मिलने से जो प्यार बढ़ता है, वह एकदूसरे के साथ अपनी-2 कुंडलिनी के साझा होने से ही बढ़ता है। सभीको अपनी कुण्डलिनी ही सबसे प्यारी होती है। जब कोई किसी के नजदीकी संपर्क में आता है, तो एक अधूरे यब-युम की तरह काल्पनिक पोज बन जाता है, जिसमें कुण्डलिनी एक शरीर से चढ़ती है, और दूसरे शरीर से उतरती है। इस तरह से दोनों शरीरों को कवर करते हुए एक कुण्डलिनी ऊर्जा लूप जैसा बन जाता है। ऐसा ही देवपूजा, सूर्यपूजा आदि के समय भी होता है।

अध्याय-14
कुण्डलिनी के साथ संगीत

संगीत के लाभदायक प्रभाव सभी जानते हैं। भौतिक रूप से तो संगीत लाभदायक है ही, आध्यात्मिक रूप से भी इसका प्रमुख योगदान है। कुण्डलिनी और संगीत का आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है।

संगीत से साक्षीभाव का विकास

संगीत से हमारे मन में चित्र-विचित्र व नए-पुराने विचार चित्रों के रूप में मन में उभरने लगते हैं। इसमें विशेष बात यह है कि उन चित्रों के साथ साक्षीभाव या अनासक्ति का भाव विद्यमान रहता है। वे कुछ-२ स्पष्ट व सुखपूर्ण स्वप्न के चित्रों की तरह प्रतीत होते हैं। इससे मन की निर्मलता में इजाफा होता है, और साथ में आनंद भी प्राप्त होता है। संगीत से आनंद मिलने की मुख्य वजह यही है। वास्तव में, संगीत प्रत्यक्ष रूप से आनंद नहीं देता, अपितु उन चित्रों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से ही देता है। एक बात और है। जो संगीत हमें अधिक रोचक लगता है, वह हमें अधिक आनंद प्रदान करता है। वास्तव में, वह संगीत अधिक मात्रा में स्पष्ट मानसिक चित्र उत्पन्न करता है, और उनमें अधिक मात्रा में साक्षीभाव भी पैदा करता है। तभी तो किसी एक को उबाऊ लगने वाला संगीत किसी दूसरे को बहुत रोचक लगता है। यदि आनंद संगीत में होता, तब तो कोई भी संगीत हर किसी को रोचक लगा करता। ऐसा भी होता है कि कभी कोई संगीत रोचक लगता है, तो कभी कोई दूसरा। मन की भावावस्था के अनुसार ही संगीत के प्रति पसंद भी बदलती रहती है। इसका यही अर्थ है कि संगीत में अपना आनंद नहीं होता, अपितु यह मन के भावों से ही आनंद उपलब्ध करवाता है। यह सभी को पता है कि अनासक्ति या साक्षीभाव के साथ ही मन के भावों से आनंद पैदा होता है।

संगीत से कुण्डलिनी का विकास

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि संगीत से साक्षीभाव पैदा होता है। साक्षीभाव अद्वैत का ही दूसरा नाम है। यह भी अक्सर अनुभव में आता ही रहता है कि अद्वैत व कुण्डलिनी साथ-२ रहने का प्रयास करते हैं। अद्वैतभाव से कुण्डलिनी मानसपटल पर उभर आती है, तथा कुण्डलिनी के विचार से अद्वैत उत्पन्न हो जाता है। इससे स्वयं ही सिद्ध हो जाता है कि संगीत से कुण्डलिनी का विकास होता है। जब संगीत से कुण्डलिनी बारम्बार मानसपटल पर आती रहेगी, तब उससे उसका निरंतर विकास तो होगा ही।

कुण्डलिनी के बारे में प्रेमयोगी वज्र का अपना अनुभव

उसके घर में रेडियो, कैसेट प्लेयर आदि का संगीत अक्सर बजता ही रहता था। आते-जाते, बस के अन्दर भी गाने सुनने को मिलते रहते थे। उन गानों से उसके मन में चमकती हुई स्पष्ट कुण्डलिनी प्रकट हो जाया करती थी। रोमांटिक गानों से उसके मन में तांत्रिक प्रेमिका के रूप की कुण्डलिनी उमड़ा करती थी, जबकि गंभीर व आध्यात्मिक गानों से गुरु के रूप की। ज्यादातर समय प्रेमिका की कुण्डलिनी ही बलवान रहती थी, क्योंकि उसमें यौनाकर्षण विद्यमान होता था, और वह स्वयं भरी जवानी में भी था। इसकी दूसरी वजह यह थी कि उस समय उसके मन में गुरु के रूप की कुण्डलिनी जागृत नहीं हुई थी।

कई वर्षों के बाद, जब उसके मन में गुरु के रूप की कुण्डलिनी जागृत हुई, तब वह ज्यादा प्रभावशाली बनने लगी। फिर उसके सामने प्रेमिका के रूप की कुण्डलिनी गौण पड़ने लगी। उससे हर प्रकार के संगीत के समय उसके मन में गुरु की ही कुण्डलिनी प्रकट होती थी। देवीरानी के रूप की कुण्डलिनी भी कभी-कभार प्रकट हो जाती थी, यद्यपि बहुत हलके रूप में। यह सिलसिला यूं ही चलता रहा, और गुरु के रूप की कुण्डलिनी उत्तरोत्तर बलवान होती गई। इसका कारण यह भी है कि वह प्रतिदिन की सुबह-शाम की एक-२ घंटे की कुण्डलिनीयोग साधना में गुरु के रूप की कुण्डलिनी का ध्यान करता था। इससे उत्साहित होकर वह दिन-रात ब्लूटुथ पोर्टेबल स्पीकर पर इंटरनेट के माध्यम से रंग-बिरंगे गाने सुनता रहता था। इससे उसे और भी बहुत से लाभ मिलते थे। ध्यान रहे कि लगातार लम्बे समय तक ऊंची आवाज में संगीत सुनना कानों के लिए नुकसानदायक है।

संगीत के विभिन्न स्वरों से विभिन्न चक्र जागृत होते हैं

ऐसा योग चर्चा में अक्सर कहा जाता है, और यह स्वाभाविक भी है। प्रत्येक स्वर एक भाव को पैदा करता है। किसी स्वर से उत्पन्न भाव मूलाधार चक्र के भाव से मेल खाते हैं, तो किसी से उत्पन्न भाव स्वाधिष्ठान से या हृदय चक्र से आदि। बच्चों के गानों से सबसे अधिक प्रभाव हृदय पर पड़ता है, तो रोमांटिक गानों का सर्वाधिक प्रभाव यौनचक्रों पर पड़ता है। वास्तव में, कुण्डलिनी तो मन में ही बन रही होती है, चाहे कोई भी चक्र क्रियाशील हो रहा हो। इसीलिए तो कहते हैं कि हर प्रकार का संगीत लाभदायक ही होता है। इसी तरह, सृष्टि की प्रत्येक ध्वनी में संगीत है, क्योंकि सभी प्रकार की ध्वनियाँ कुण्डलिनी को उत्तेजित करती हैं।

अध्याय-15
अवसादरोधक दवा से कुण्डलिनी लाभ

अवसादरोधक दवा कैसे काम करती है

प्रेमयोगी वज्र प्रचंड दुनियादारी में उलझा हुआ व्यक्ति था। उससे उसका मन बहुत अशांत हो गया था। यद्यपि वह शरीरविज्ञान दर्शन की सहायता से उसे काफी हद तक काबू कर रहा था। परन्तु फिर भी वह पूरी तरह से काबू नहीं हो पा रहा था। एक बार वह गंभीर गैस्ट्राइटीस के वहम से एंडोस्कोपी करवाने गया। चिकित्सक ने उसकी मनोदशा को समझते हुए उसे डेढ़ महीने की अवसादरोधक व क्रोधनाशक दवा (नाम याद नहीं) प्रेस्क्राईब कर दी। उसे उसको खाते हुए अपने अवसाद व क्रोध में काफी कमी महसूस हो रही थी। उसने गूगल पर पढ़ लिया था कि एक महीने तक रोजाना खाने पर ही इस दवा का प्रभाव स्थाई बन पाता है। अतः वह दवा को खाता रहा। उसे लग रहा था कि जो काम आध्यात्मिक पुस्तक शरीरविज्ञान करती थी, वही काम वह दवा भी कर रही थी। यद्यपि दवा का काम कुछ ज्यादा ही जड़ता, उग्रता, स्मरणशक्ति की कमी, और कृत्रिमता से भरा हुआ था। उसे आत्मजागरण व कुण्डलिनीजागरण का अद्वैतकारक प्रभाव भी अवसादरोधी दवा के अद्वैतकारक प्रभाव से मिलता-जुलता लगा, यद्यपि शुद्धता और स्तर में अंतर के साथ। एकहार्ट टोल्ले ने भी लगभग ऐसा ही बयान किया है कि अवसादरोधी दवा का प्रभाव आत्मजागरण के प्रभाव जैसा होता है, यद्यपि तुलनात्मक रूप से बहुत निम्न दर्जे का और उग्रता के साथ।

वह लम्बी खांसी से परेशान था

उसने बहुत सी एंटीबायोटिक दवाइयां खाईं, पर खांसी ठीक नहीं हुई। वह समझ रहा था कि एंटीबायोटिक दवाइयाँ काम नहीं कर रही थीं, जीवाणुओं के प्रतिरोध के कारण। वास्तव में उसकी खांसी की वजह क्रोनिक गेस्ट्राइटीस थी। जब उसने 1 महीने तक पेंटोपराजोल और डॉमपेरिडोन दवाइयां खाईं तथा योग करने के साथ कुछ सावधानियां बरतीं; तब उसकी खांसी जड़ से ख़त्म हो गई। आजकल के तनाव भरे जीवन में यह समस्या विकराल हो गई है, जिस बारे में अधिकाँश लोग गलतफहमी का शिकार हो जाते हैं।

मस्तिष्कप्रभावी दवाओं से रूपांतरण

शरीरविज्ञान दर्शन एक अद्वैतवादी सोच है। इससे सिद्ध होता है कि वह दवा अद्वैत को उत्पन्न कर रही थी। माईंड अल्टरिंग ड्रग्स भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए पावर ब्रेक की तरह काम करती है, जिससे मस्तिष्क के सॉफ्ट टिशू को नुक्सान पहुँच सकता है। उसे अपनी स्मरणशक्ति कम होती हुई महसूस हो रही थी। क्रोध के समय तो उसका मस्तिष्क जवाब देने लगता था, इसलिए वह क्रोध कर ही नहीं पाता था। क्रोध से उसका मस्तिष्क दबावयुक्त, भारी, सुस्त, और अंधकारमय सा हो जाता था। शारीरिक रूप से भी वह शिथिल व कमजोर जैसा रहने लग गया था। उसकी कार्यक्षमता काफी घट गई थी। वह अपने अचानक हुए परिवर्तन को देखकर हैरान था। इसलिए उसने 30-35 दिन के बाद वह दवा बंद कर दी, और बची हुई दवा कूड़ेदान में डाल दी। यद्यपि उसका रूपांतरण स्थायी रूप से हो गया था। वह पिछली अवस्था में कभी भी वापिस नहीं लौट पाया।

अवसादरोधक दवा आनंद व अद्वैत को कैसे उत्पन्न करती है?

इससे व्यक्ति किसी के भी बारे में गहराई से नहीं सोच पाता, और न ही ढंग से विश्लेषण या जजमेंट कर पाता है। इससे सभी वस्तु-विचारों के प्रति स्वयं ही साक्षीभाव पैदा हो जाता है। उससे आनंद पैदा होता है। साथ में, विश्लेषण व जजमेंट की कमी से सभी वस्तु-विचारों के बीच का अंतर मिटने लगता है, जिससे सभी कुछ एक जैसा लगने लगता है। यही तो अद्वैत है। यह सब ऐसे ही होता है, जैसे शराब के हल्के नशे में होता है। सीधा सा मतलब है कि मेडीटेशन बुद्धि-शक्ति को बढ़ा कर अद्वैतभाव को उत्पन्न करती है, जबकि मस्तिष्क-परिवर्तक दवाएं बुद्धि-शक्ति को घटा कर। फिर भी ये दवाएं आध्यात्मिक जागरण की झलक तो दिखा ही देती हैं। उस झलक का पीछा करते हुए आदमी वास्तविक आत्म-जागरण को भी प्राप्त कर सकता है।

मस्तिष्क-परिवर्तक दवाओं से ध्यान लगाने में कैसे सहायता मिलती है?

अपनी मानसिक गतिविधियों के अचानक ही बहुत धीमा पड़ने से प्रेमयोगी वज्र को आश्चर्य भी हुआ, और कुछ दुःख भी। वह अपनी पूर्ववत मानसिकता को प्राप्त करने के उपाय सोचने लगा। वह मानसिकता उसकी याददाश्त से जुड़ी हुई थी, जो ड्रग के प्रभाव से काफी कम हो गई थी। उसे कुछ समय के लिए एक ऐसे व्यक्ति की संगति मिल गई, जो नियमित रूप से योगासन करता था। उसे देखकर वह भी करने लगा। धीरे-२ उसे अभ्यास हो गया। वह इंटरनेट व पुस्तकों की मदद भी लेने लगा। उसमें मानसिक शक्ति तो पहले की तरह प्रचुर थी, परन्तु वह कहीं लग नहीं रही थी। इसका कारण यह था कि वह दवा के प्रभाव से उन पिछली बातों व घटनाओं को भूल गया था, जिनसे उसकी मानसिक शक्ति जुड़ कर क्षीण होती रहती थी। दवा से उसका पिछला संसार मिट जाने से उसकी प्रचंड मानसिक

शक्ति उससे मुक्त हो गई थी। इसीलिए उसे महसूस नहीं हो रही थी। योग की सहायता से वह छुपी हुई व भरपूर मानसिक शक्ति उसकी कुण्डलिनी को स्वयं ही लगने लगी। इससे वह समय के साथ जागृत हो गई।

दुनियादारी की मानसिकता का कुण्डलिनी-मानसिकता के रूप में प्रकट होना

कुण्डलिनीयोग से उसे अपनी खोई हुई पुरानी मानसिकता प्राप्त हो गई। यद्यपि वह पहले की तरह अद्वैतपूर्ण दुनियादारी के रूप में नहीं थी, अपितु वह अकेली कुण्डलिनी के रूप में थी। समस्त मानसिक शक्ति एकमात्र कुण्डलिनी को लगने से वह जागृत हो गई।

प्रबल मानसिकता की प्राप्ति केवलमात्र अद्वैतभाव से संभव

यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रबल, अविरल व स्थायी मानसिकता केवल अद्वैतपूर्ण दुनियादारी से ही संभव है। द्वैतपूर्ण व्यवहार से मानसिकता चरम के निकट पहुँचने से पहले ही क्षीण होती रहती है। इससे सिद्ध होता है कि प्रेमयोगी वज्र का अद्वैतपूर्ण जीवन-व्यवहार (geetaa-ukt karmayoga) भी उसके कुण्डलिनी-जागरण में सहायक बना।

अध्याय-16
कुंडलिनी जागरण से ही समुद्र में छिपे हुए राक्षसों और भूतप्रेतों का समूल नाश संभव है

दोस्तो, शिवपुराण में एक कथा आती है कि पार्वती के वरदान से अंहकार में डूबी हुई दारुका नाम की एक राक्षसी थी। उसका पति दारुक भी महाबलवान था। वह अनेक राक्षसों को साथ लेकर सत्पुरुषों को दुख दिया करती थी। पश्चिम सागर के तट पर उसका एक वन था, जो सर्वसमृद्धिसंपन्न था। दारूकी ने उसकी देखरेख का भार अपने पति दारुक को दिया हुआ था। लोगों ने ऋषिमुनियों से उन्हें भगाने की प्रार्थना की। तो ऋषियों ने कहा कि अगर ये राक्षस पृथ्वी पर प्राणियों का वध करते रहेंगे और यज्ञ का विध्वंस करते रहेंगे तो खुद भी मर जाएंगे। शाप को सुनकर मौके का फायदा उठाते हुए देवता उनसे युद्ध करने लगे। शाप के डर से राक्षसों ने सोचा कि अगर वे युद्ध करेंगे तो भी मारे जाएंगे, और न करें तो खाएंगे क्या, तब भी मारे जाएंगे। तब दारुक ने पार्वती द्वारा प्रदान किए गए उस वर को याद किया कि वह अपने वन और परिजनों के साथ जहां चाहे वहां जा सकती है। राक्षसों की सलाह से वह संपूर्ण वन को उड़ाकर समुद्र के बीच में पानी पर चली गई। उस घटना को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे पर्वत पंख लगा कर आसमान में उड़ रहे हों। और्व मुनि के शाप के भय से वे राक्षस भूमि पर नहीं आते थे। बल्कि जल में ही घूमते रहते थे। वे नावों पर बैठे मनुष्यों को अपने नगर में लाकर जेल में डालते और किसी किसी को मार भी देते थे। वे वहां रहकर भी किसी न किसी तरह से लोगों को पीड़ा देते ही रहते थे। जैसे लोगों को पहले उनके स्थल पर रहने पर भय बना रहता था, वैसे ही अब उनके जल में रहने पर भी बना रहने लगा। एक बार वह राक्षसी जल में स्थित अपने नगर से निकल कर लोगों को पीड़ा देने के लिए पृथ्वी पर जाने का मार्ग रोककर स्थित हो गई। उसी समय वहां चारों ओर से मनुष्यों से भरी हुई बहुत सी सुंदर नावें आईं। उससे खुश हो राक्षसों ने जल्दी ही उनको पकड़ लिया। उन्हें पक्की जंजीरों में बांधकर जेल में डाल दिया। वहां उनको राक्षसों की फटकार भी पड़ती रहती थी, जिससे वे दुखी रहते थे। उन लोगों में सुप्रिय नाम का शिवभक्त शिवपूजन करता रहता था, और अन्य सभी लोगों को भी सिखाकर उनसे करवाता था। शिव भी उसकी चढ़ाई सामग्री को प्रत्यक्ष ग्रहण करते थे, पर यह बात वैश्य को भी पता नहीं थी। एकदिन दारुक राक्षस के सेवक ने वैश्य के समक्ष शिवजी को प्रत्यक्ष देखा। दारुक ने वैश्य से पूछा तो उसने पता होने से इंकार कर दिया। दारुक ने उसे मरवाने का हुक्म दिया। जब राक्षस उसे मारने दौड़े तो वह लगातार शिवकीर्तन करने लगा। इससे चारों ओर दरवाजों वाले उत्तम मंदिर के साथ शिव उस गड्ढे मतलब कैदखाने से प्रकट हुए। शिव ने वैश्य को पाशुपत अस्त्र देकर सब राक्षसों को मार दिया। फिर वरदान दिया कि इस वन में चारों वर्णों के धर्म नित्य स्थिर रहेंगे और यहां शिवभक्त ही होंगे, तमोगुणी कभी नहीं होंगे। इससे दुखी दारुकी पार्वती के पास रोती हुई चली गई। पार्वती ने उन राक्षसों की रक्षा हेतु शिव से कलह किया। इससे शिव ने उनसे कहा कि फिर जो चाहे वो करो। फिर पार्वती ने शिव से कहा कि आपका वचन या वरदान युग के अंत में लागू होगा। तब तक तामसी सृष्टि बनी रहेगी। और कहा कि ये दारुकी राक्षसी मेरी शक्ति है, सभी राक्षसियों में बलिष्ठ है, यह राक्षसों पर राज करे। ये राक्षसों की पत्नियां यहां अपने पुत्रों को उत्पन्न करेंगी। ये सब मिलकर इस वन में मेरी आज्ञा से निवास करेंगी। तब शिव ने कहा कि इस वन में अपने भक्तों की रक्षा के लिए मैं भी निवास करूंगा। यहां पर जो अपने वर्णोचित धर्म में स्थित होकर प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। फिर कलियुग के बीतने पर सत्ययुग प्रारंभ होने पर अपनी बड़ी सेना के साथ जो वीरसेन नामक प्रसिद्ध राजा होगा, वह मेरी भक्ति से अति पराक्रमी होगा, और यहां आकर मेरा दर्शन करेगा, और उसके फलस्वरूप चक्रवर्ती राजा बनेगा। इस प्रकार लीलाधारी शिव और पार्वती हासविलास करते हुए वहीं स्थित हो गए। शिव नागेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से और पार्वती नागेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई।

मिथक कथा का अनुसंधानात्मक विश्लेषण

दारुक राक्षस अहंकार है। उसकी पत्नि दारुका राक्षसी बुद्धि है। उससे बहुत से विचार पैदा होते हैं। वे ही इन दोनों की राक्षस संतानें हैं। ये आदमी को इधर उधर भटकाते रहते हैं, उन्हें चिंता में डालते हैं, उनमें भय आदि अनेक दोष पैदा करते हैं। कई तो इन दोषों के कारण मर भी जाते हैं। पश्चिम दिशा शरीर का पिछला हिस्सा है। वन बालों से भरे हुए मास्तिष्क क्षेत्र को कहा है, जो शरीर की पिछली तरफ ज्यादा फैला होता है। सागर मूलाधार क्षेत्र है क्योंकि दोनों ही सबसे नीची जगह पर स्थित होते हैं। यह मानसिक जंजाल मस्तिष्क में ही फैला होता है। अंहकार ही शरीर समेत इसकी भी रक्षा करता है। लोग इस जंजाल की शांति के लिए गुरुओं और ऋषियों के पास जाते हैं। ऋषि कहते हैं कि यदि मानसिक जंजाल लोगों को ऐसे ही भटकाता रहा तो वे काम कैसे कर पाएंगे। और अगर वे काम नहीं करेंगे तो कमाएंगे क्या और खाएंगे क्या। इससे शिकार बने लोगों के ही न रहने से शिकारी बना यह मनोजंजाल भी किसे

परेशान करके खाएगा। इससे आश्वस्त होकर लोग इस मानसिक जंजाल को काबू में रख कर अपने अपने काम में लग जाते हैं। इसको ऐसा कहा है कि मौका जानकर देवताओं ने उनसे युद्ध छेड़ दिया, क्योंकि देवताओं के रूप में स्थित इंद्रियों से ही लोग कामकाज कर पाते हैं। अगर यह मानसिक जंजाल योग की मानसिकता से फिर प्रकट होता रहता है, तो इसके प्रति खुद ही साक्षीभाव बना रहता है, क्योंकि लोग अपने कामों में व्यस्त होते हैं। इससे यह नष्ट हो जाएगा। अगर न प्रकट होता रहे, तो अपनी सत्ता को कैसे कायम रखे, मतलब जिंदा कैसे रहे। इसको ऐसे कहा गया है कि अगर राक्षस देवताओं से युद्ध करें, तो भी मारे जाएंगे, और अगर न करें, तो खाएंगे क्या, इसलिए तब भी मारे जाएंगे। मतलब लोगों की परेशानी ही उनका भोजन है, और उससे बढ़ने वाला अज्ञान का अंधेरा ही उनकी बढ़ी हुई सेहत है। इसलिए मानसिक जंजाल सूक्ष्म या अव्यक्त या अवचेतन रूप में आकर छुप सा जाता है। एक प्रकार से यह मूलाधार रूपी अंधेरे समुद्र में छुप जाता है। समुद्र के बीच में, गहराई में अंदर अंधेरा ही होता है, क्योंकि वहां तक प्रकाश की किरण नहीं पहुंच पाती। जो भी आदमी जिंदगी से थक कर या परेशान होकर अवसाद में आ जाता है, वह एक प्रकार से मूलाधार रूपी समुद्र में नौका विहार करता है, यह सोचकर कि यहां पर दुनियादारी के जमीनी झमेले नहीं हैं। थोड़े समय तो उसे सुकून मिलता है, पर फिर वह अंधेरे अवचेतन मन की गिरफ्त में आ जाता है। हो सकता है कि किसी गरीबी, दुर्भिक्ष, महामारी, राजनैतिक या भौगोलिक संकट के दौर में बहुत से लोग सामूहिक रूप से परेशानी और अवसाद की चपेट में आ गए हों। इसे ही बहुत से लोगों का एकसाथ नौकाओं से समुद्र में उतरना कहा गया हो। अवचेतन मन की अमनस्कता से अनुभव होने वाला अंधेरा उन राक्षसों के द्वारा उसे अंधेरी जेल की कोठरी में डालना है। अंधेरे के रूप में ही वे राक्षस उसे परेशान करते हैं। अवचेतन मन में दबे हुए पुराने किए हुए कुकर्म जब गुस्से से भरे जीवों या मनुष्यों के रूप में महसूस होते हैं, शायद इसे ही राक्षसों द्वारा उन लोगों को फटकारना कहा गया हो। कईयों को मार देते हैं, मतलब कई लोग अवसाद से बीमार होकर मर जाते हैं, और कई आत्महत्या कर लेते हैं। कोई शिवभक्त उस अंधेरी अवस्था में मूलाधार पर कुंडलिनी का ध्यान करता है। उसके सत्संग से अन्य लोगों को भी लाभ मिलता है। जितना ज्यादा अंधेरा उस अवचेतन मन रूपी अंधेरी कोठरी में होता है, कुंडलिनी भी उतनी ही ज्यादा चमकती है। शायद इसी को ऐसा कहा गया है कि एक राक्षस ने भगवान शिव को प्रत्यक्ष देखा। अंधेरा रूपी जगत योगी को साधना से रोकता है। इससे उसके मन में न जगत का क्योंकि वह पहले ही जगत को छोड़ चुका है, और न ही साधना का, कहीं का भी प्रकाश नहीं बचा रहता। यह अवस्था मृत्यु के समान ही है। शायद इसे ही ऐसा कहा गया है कि दारुक रूपी लोगों के अहंकार ने राक्षसों रूपी सांसारिक विचारों और वस्तुओं के माध्यम से वैश्य को मरवाने का हुक्म दिया। इससे साधक जगत के डर के मारे या खुंदक में आकर अपनी साधना को और तेज बढ़ाता है, और अपनी कुंडलिनी को जागृत कर लेता है। शायद इसी को ऐसा कहा है कि उन राक्षसों के डर से वह वैश्य लगातार और जोर जोर से शिवकीर्तन करने लगा। फिर चार दरवाजों वाला मंदिर प्रकट होता है, और उसमें शिव विराजमान होते हैं। मूलाधार चक्र की भी चार पंखुड़ियां होती हैं। कुंडलिनी जागरण ही शिव का प्रत्यक्ष होना है। वह मानसिक जंजाल रूपी राक्षसों को ख़त्म करता है। दरअसल अवचेतन मन आत्मा के अंधकार के रूप में आत्मा से चिपका होता है। जब आत्मा में प्रकाश पैदा हो जाता है, तो वह खुद नष्ट हो जाता है।

पार्वती प्रकृति रूपा है। वह तो संसार का विस्तार चाहती है, जो तमोगुण के बिना संभव नहीं। दारुकी रूपी बुद्धि उनकी शक्ति है। मतलब बुद्धि से ही संसार का विस्तार होता है। बुद्धि ही सबसे बलशाली इंद्रिय है। वह अंहकार रूपी जीव को पति अर्थात अपना रक्षक बनाकर बहुत से राक्षस रूपी विचारों को पैदा करती है। जो विचार हैं, वे हस्तपाद आदि इंद्रियों से विवाह करके मतलब उनसे मिलकर व उनके सहयोग से किस्म किस्म की सांसारिक वस्तुएं पैदा करते हैं। वे सभी वस्तुएं ही उन राक्षसों और राक्षसियों के पुत्र कहे गए हैं। ये सभी रहते उसी वन रूपी मास्तिष्क में जो सूक्ष्मरूप में मूलाधार में जाकर बस जाता है। दुनियावी वस्तुएं बेशक बाहर लगें देखने में, पर सभी मस्तिष्क में ही होती हैं। उनको वहां रहने की आज्ञा बुद्धि से ही मिलती है, क्योंकि अगर वह चाहे तो वह योग आदि से उन सबको बाहर भी निकलवा सकती है। शिवलिंग, शिवमंदिर और शिवमूर्ति भी इसी वन का हिस्सा हैं, जो भक्तों की रक्षा करते हैं। जो आदमी वर्णोचित धर्म मतलब कर्मयोग का पालन करेगा और उससे उत्पन्न शक्ति से शिवरूपी कुंडलिनी से प्रेम करके उसे जागृत करेगा मतलब शिव के दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा, मतलब ऐसा जीवात्मा होगा जिसके सभी चक्र जागृत या क्रियाशील होंगे। कलियुग, सतयुग ये सब आदमी की अवस्थाएं हैं। कलियुग अवस्था मतलब आदमी की प्रतिस्पर्धा और भौतिकता से भरी दुनियादारी वाली अवस्था। जब तक यह अवस्था है, तब तक तो मन के दोष रहेंगे ही। जब आदमी विकसित होकर सत्ययुग वाली अवस्था में, मतलब आध्यात्मिक साधना वाली अवस्था में प्रवेश करता है, तब वह पराक्रमी योद्धा की तरह इन दोषों का वध करता है। ऐसा शिव की शक्ति से मतलब शिव के ध्यान से होता है। उससे उसको कुंडलिनी जागरण मतलब शिवदर्शन मिलता है, जो चक्रवर्ती राजा जैसी अवस्था है। क्योंकि मूलाधार चक्र कुंडलिनी शक्ति और सुषुम्ना नाड़ी सर्प से जोड़ी गई हैं, इसलिए मूलाधार में स्थित लिंग का नाम

नागेश्वर और उससे जुड़ी शक्ति का नाम नागेश्वरी है। इससे जुड़ी वीरसेन राजा की रहस्यात्मक कथा क्या है, उसका वर्णन अगली पोस्ट में करेंगे।

अध्याय-17

कुंडलिनी योगी नृसिंह भगवान रूपी ध्यानचित्र की मदद से हिरण्यकशिपु रूपी अहंकार व तांत्रिक पापों को भस्म करके प्रह्लाद रूपी आत्मबुद्धि की रक्षा करता है

दोस्तों, एक पोस्ट में मोर कैसे योगी बना हुआ था। **योगी का पिछला एनर्जी चैनल नर मोर है, तो अगला चैनल मोरनी है**। अवसाद से भरे माहौल में मूलाधार की शक्ति से उसके मस्तिष्क में बहुत से दोषपूर्ण विचार बनते हैं, क्योंकि शक्ति को व्यय होने का और रास्ता नहीं मिलता। उन्हीं विचारों अर्थात आंसुओं को वह **खेचरी मुद्रा** के रूप में उल्टी जीभ को मुंह के अंदर के नर्म तालु से छुआ कर पीता है। वही आंसू फ्रंट चैनल से नीचे उतरते हुए चक्रों पर विशेषकर **नाभि चक्र** पर कुण्डलिनी चित्र का रूप ले लेते हैं, मतलब **मोरनी गर्भवती** हो जाती है।

पुराणों की एक कथा के अनुसार **हिरण्यकशिपु** नामक एक राक्षस ने **ब्रह्मा** से वरदान मांगा कि न वह मनुष्य के द्वारा न पशु के द्वारा, न दिन में न रात में, न आकाश में और न धरातल पर, न घर के अंदर न बाहर, और न अस्त्र से और न ही शस्त्र से मारा जा सकेगा। हिरण्यकशिपु भगवान **विष्णु** को अपना कुलशत्रु मानता था। परंतु उसका बेटा **प्रह्लाद** विष्णुभक्त था। हिरण्यकशिपु ने उसे बहुत समझाया पर जब वह नहीं माना तो उसने उसे मारने के बहुत से प्रयास किए। एकबार उसने लोहे का खंबा लाल गर्म करवाया और प्रह्लाद को उससे चिपकने को कहा। प्रह्लाद ने एक चींटी को उस पर रेंगते हुए देखा तो बिना डरे उस खंबे को गले लगा लिया। तभी उससे एक विचित्र जीव निकला, जिसका मुंह शेर का था परंतु वह नीचे से आदमी था। उसका नाम **नृसिंह** था। उसने हिरण्यकशिपु को संध्या के समय, घर के दरवाजे पर ले जाकर, अपनी गोद में उठाकर अपने नखों से मार डाला। हिरण्यकशिपु **तांत्रिक पाप** का प्रतीक भी है। तांत्रिक **पंचमकार** पापरूप ही तो हैं। पापरूपी शक्ति का रुझान भौतिक दुनिया की तरफ ज्यादा होता है। इसलिए वह आदमी को **अध्यात्म** की तरफ नहीं जाने देती। पर **गुरुकृपा** से आदमी का रुझान अध्यात्म की ओर हो जाता है। इसीको कथा में ऐसे कहा गया है कि पाठशाला के गुरु ने प्रह्लाद को अध्यात्म की तरफ मोड़ा। फिर हिरण्यकशिपु ने उस गुरु को हटा कर छलकपट से भरी भौतिक शिक्षा देने वाला नया गुरु रख लिया। पर प्रह्लाद का स्वभाव नहीं बदला। मतलब साफ है कि **अंधी शक्ति** सच्चे गुरु से भी दूर ले जाने की कोशिश करती है, पर अगर सच्चे गुरु से थोड़ा सा भी संपर्क स्थापित हो जाए, तो वह कामयाब नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप अध्यात्म की तरफ झुके हुए इन तांत्रिक पापों से आदमी की **सुषुम्ना** क्रियाशील हो जाती है। यही हिरण्यकशिपु द्वारा लाल गर्म लोहे का खंबा बनाना है। योगी द्वारा ध्यानचित्र को इसके साथ जोड़ना ही उसका इससे आलिंगन करना है, क्योंकि आदमी का अपना रूप भी वही होता है, जिसका वह हरपल **ध्यान** कर रहा होता है। ध्यानचित्र के जागने मतलब नृसिंह भगवान के प्रकट होने से अन्य सभी पापों के साथ कुण्डलिनी साधना की सफलता के लिए किए गए वे तांत्रिक पाप भी नष्ट हो जाते हैं। यही नृसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु का वध है। संध्या के समय उस जलते खम्बे से नृसिंह का प्रकट होना मतलब अन्य समय की अपेक्षा उस समय सुषुम्ना ज्यादा क्रियाशील होकर सहस्रार में ध्यान चित्र को जागृत जैसा करती है। सक्रिय सुषुम्ना नाड़ी ही वह दहकता लाल लौह स्तंभ है। सुषुम्ना भी रीढ़ की हड्डी के अंदर रहती है, जो लोहे की तरह कठोर है। क्योंकि कुंडलिनी चित्र को कई लोग **भूतिया** जैसा डरावना मानते हैं, क्योंकि उसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता, इसीलिए उसको डरावने नृसिंह का रूप दिया गया है। ध्यान चित्र न मनुष्य होता है और न ही पशु। इसको ऐसे समझ सकते हैं कि जब **हनुमान, गणेश** जैसे अर्धमानुष रूपों का ध्यान किया जाता है, तब ध्यानचित्र सबसे ज्यादा अभिव्यक्त होता है। वह न अंदर होता है और न ही बाहर। इसका मतलब है कि ध्यानचित्र कोई भौतिक वस्तु नहीं है, बल्कि केवल एक **काल्पनिक चित्र** है। वह न दिन में अच्छे से बनता है और न रात को, बल्कि संध्या के समय कुंडलिनी योग करते हुए बनता है। वह हिरणयकाशीपु को गोद में उठाकर उसके पेट को नख से फोड़ता है, मतलब मूलाधार व **स्वाधिष्ठान** से **अवचेतन** और **अचेतन** मन के रूप में दबे **अहंकार** को ऊपर उठाकर उन्हें चक्रौं पर प्रकट करके समाप्त करता है, मतलब यह विपासना साधना ही है। **सहस्रार चक्र में यह अहंकार पूरा अभिव्यक्त जैसा बना रहता है, और मूलाधार में सोया हुआ सा रहता है, इसलिए दोनों ही स्थानों पर मरने को नहीं आता। यह बीच वाले चक्रों में ही अर्धजागृत या अर्धसुषुप्त सा रहता है, इसलिए बीच में ही मरने को आता है। विपासना साधना के साक्षीभाव का भी तो यही सिद्धांत है**। यह शक्ति के द्वारा चक्रभेदन ही है। पहले अवचेतन मन रूपी धरातल से सुषुप्त विचारों और वासनाओं को प्राण शक्ति से जगा कर चक्रों पर अभिव्यक्त किया जाता है, फिर चक्रों पर प्राण के प्रवाह से उनका भेदन किया जाता है। दरअसल भेदन या नाश तो उन **वासनाओं व संस्कारों** का होता है, पर भेदन चक्रों का माना जाता है। क्योंकि पेट का **नाभि चक्र** सबसे प्रमुख होता है, इसलिए हिरण्यकशिपु का पेट फाड़ने की बात कही गई है। क्योंकि ज्यादातर योगी चक्रस्थान पर अंगुली का नख वाला सिरा रख कर नख से चक्र की तीव्र चुभन वाली संवेदना से या कम से कम अंगुली रखकर ध्यान को मजबूत

करते हैं, इसीलिए कहा गया है कि नरसिंह ने हिरण्यकशीपु को नख से फाड़ा। इसमें जो संतुलित या बीच वाली अवस्थाओं में हिरणकशिपु का वध है, वह यही बताता है कि **संगम अर्थात यिनयाँग** वाली अवस्था में ही सुषुम्ना क्रियाशील होती है। **अहंकार को न कोई मनुष्य मार सकता है, और न कोई पशु। उसे किसी भी अस्त्र–शस्त्र से नहीं मारा जा सकता। उसे न तो पूरी तरह बाहर अर्थात बाह्यमुखी होके मारा जा सकता है, और न ही पूरी तरह अंदर अर्थात अंतर्मुखी होकर, बल्कि दोनों के उपयुक्त मिश्रण से ही मारा जा सकता है।** कुण्डलिनी योगी को जो पीठ में अर्थात सुषुम्ना में रेंगती जैसी हल्की संवेदना महसूस होती है, उससे उसे कुण्डलिनी जागने बारे विश्वास हो जाता है, जिससे वह योगाभ्यास में लगा रहता है, और सुषुम्ना को क्रियाशील करके कुण्डलिनी जागरण प्राप्त कर लेता है। इसीको ऐसे कहा गया है कि प्रह्लाद को उस **जलते लोहस्तंभ** पर एक कीड़ी रेंगते हुए दिखी, जिससे आश्वस्त होकर उसने उसे गले लगा लिया, जिससे नृसिंह भगवान प्रकट हुए।

अध्याय-18
कुण्डलिनीयोग एक अध्यात्मवैज्ञानिक मशीन के रूप में

मनोमय शरीर भी आदमी खुद ही होता है। वह कोई और नहीं होता। वह बहुत विस्तृत होता। जब उसे अपने आप के रूप में अनुभव किया जाता है, तब वह क्षीण होने लगता है, और कुण्डलिनी छवि का रूप लेने लगता है। खालीपन, हल्कापन और आनंद सा भी महसूस होता है। इसी तरह, दरअसल **ज्ञान** आत्मा का होता है। पर **विज्ञान** मतलब विशेष ज्ञान तब होता है, जब आत्मा के साथ मन मतलब मनोमय शरीर भी जुड़ जाता है। **मन आत्मा का ही विशेष रूप है।** इसलिए मन का ज्ञान जब आत्मा के विशेष ज्ञान के रूप में किया जाता है, तब यही **विज्ञानमय कोष** है। मन का साधारण व पराई वस्तु के रूप में ज्ञान तो मनोमय कोष है। पर जब उसे ही अपना रूप समझा जाता है, तब यही विज्ञानमय कोष है। यह भी शरीर से जुड़ा हमारा ही भाग या कोष है, पर लगता है जैसे बाहर अनंत दिशाओं और दूरियों में फैला है। **दरअसल आदमी एक उड़ती हुई पतंग की तरह है। मन उड़ने वाला रंगीन कागज है, इसके शरीर से जुड़े होने की भावना डोर है, और शरीर उस डोर को पकड़ने वाला है। जब तक डोर है, तभी तक पतंग सलामत है, नहीँ तो भटक कर नष्ट हो जाएगी।** एक जगह मैंने बस के डेशबोर्ड पर लिखा हुआ पढ़ा था कि मन एक पैराशूट की तरह है, यह तभी अच्छे से काम करता है, जब यह खुला हुआ होता है। शायद इसका भी यही अर्थ है। शास्त्रों में इसे ऐसे कहा है कि मन को दृष्य रूप न समझकर द्रष्टा रूप समझना है। **साक्षीभाव** भी यही है, बल्कि इसका ही हल्का और आसान तरीका है। जब आत्मा मन को चुपचाप साक्षी बनकर देखता है, तब भी मन की **ध्यान छवि** अभिव्यक्त होने लगती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि मन आत्मा का ही विशेष रूप है, मतलब मन विज्ञान रूप है। मन तभी तक है, जब तक इसे बाहरी या पराया समझा जाए। जब इसे अपना आत्मरूप समझा जाता है, तब यह हल्का पड़ने लगता है। घर की मुर्गी दाल बराबर। महत्त्वबुद्धि बाहरी या पराई चीज के लिए होती है, अपनी चीज या अपने लिए नहीं। इसमें मन नष्ट नहीँ होता, बल्कि महत्त्वहीन सा होकर धीमा पड़ जाता है। इससे आनंद पैदा होता है। पहले की भटकी हुई अवस्था में मन ने जो अतिरिक्त शक्ति ली हुई थी, वह कुण्डलिनी छवि को मिल जाती है। इससे आनंद में और इजाफा होता है, क्योंकि कुण्डलिनी छवि लम्बे समय तक बने रहकर बिना आदमी के दार्शनिक प्रयास के खुद ही भटकते मन की अतिरिक्त चर्बी उतारकर चूसती रहती है, जिससे आनंद लम्बे समय तक, और पहुंचे हुए कुण्डलिनी योगियों में तो स्थायी ही बना रहता है। मन की हल्की वृत्ति **सत्त्वगुणरूप** है। इसलिए मन के क्षीण होने से जो मनमिश्रित अंधेरा जैसा पैदा होता है, उसे **सतोगुणी अविद्या** कहते हैं, जैसा किसी एक पोस्ट में बताया गया था। इसी से इसमें आनंद होता है। यही **आनंदमय कोष** है। इसके विपरीत मन का बिल्कुल नष्ट होना **तमोगुणरूप** है, और मन का पूरे वेग में होने से उसका वास्तविक जैसा लगना **रजोगुणरूप** है। इनके साथ जुड़ा अविद्यारूपी अंधेरा क्रमशः **तमोगुणी अविद्या** और **रजोगुणी अविद्या** है। पहली अवस्था में **दुःख** और दूसरी अवस्था में **सुख** होता है, आनंद नहीँ। सुख और दुःख एकदूसरे से जिन्दा रहते हैं। आनंद सुख व दुःख से परे है, और हमेशा एक जैसा बना रहता है। आनंद को सुख और दुःख का मिश्रित रूप भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें मन और अंधेरा दोनों बराबर संतुलन में एकसाथ रहते हैं। रजोगुण में मन बहुत भड़कीला होता है, जिसके साथ अंधेरा बिल्कुल नहीँ रहता, इसलिए यह सुख है। जब मन थककर बैठ जाता है, तब पूरी तरह से बेजान सा हो जाता है, जिससे मस्तिष्क में घुप्प अंधेरा छा जाता है। यह दुःख है। यही घोर तमोगुण भी है। सुख और दुःख का चक्र चलता रहता है, जिससे आत्मा की सफाई नहीं होती। मुझे अपनी प्रारम्भिक पुस्तक के समय इसका इतना गहरा विश्लेषण पता नहीं था, हालांकि ऐसा व्यावहारिक अनुभव जरूर था। उसमें मैंने इसे ऐसे लिखा है कि **अनासक्ति** से ही आनंद पैदा होता है। बात सही भी है। अनासक्ति से मन धीमे और **संतुलित** चलता है। वैसे **आसक्ति** औरों के प्रति ही होती है, अपने प्रति नहीँ। इसलिए मन को आत्मा समझने से अनासक्ति खुद पैदा होती है। मैंने अनासक्ति सिद्धांत के बहुत से उदाहरण दिए थे। जैसे कि आनंद **मदिरा** से नहीं बल्कि उससे मन के धीमा होने से होता है, जो अनासक्ति व सत्त्वगुण का लक्षण है। इसी तरह आनंद **मांसभक्षण** से नहीं बल्कि उससे उत्पन्न जीवन के प्रति नश्वर बुद्धि से पैदा **वैराग्य** से उत्पन्न अनासक्ति से पैदा होता है। ऐसे बहुत से उदाहरण दिए थे।

कुण्डलिनी योग से यही प्रभाव पैदा होता है। अनासक्ति अर्थात **अद्वैत** और कुण्डलिनी साथसाथ रहते हैं। इसलिए कुण्डलीनियोग से **कुण्डलिनी छवि** के मन में रहने पर आनंद पैदा होता है। अतः कुण्डलीनियोग एक अध्यात्मवैज्ञानिक मशीन या **तकनीक या ट्रिक** की तरह है, जो अनासक्ति के **दार्शनिक** झमेले से बचाते हुए स्वचालित रूप से अनासक्ति का प्रभाव पैदा करता है। इसका उदाहरण मैं अपने से देता हूँ। मैंने बहुत पैसा खर्च करके कुछ विकासात्मक काम किए थे। पर कुछ अटल कारणों से उनमें से कुछ चीजें छूट गईं और कुछ में घाटा हुआ। मुझे पछतावा भी हुआ और नहीं भी, क्योंकि चलना ही जीवन है। जब आदमी बाहर नजर घुमाए रखता है तब वह अपनी चीज से संतुष्ट नहीँ होता। उससे उसका अपना आनंद भी गायब हो जाता है। मैं डिस्टर्ब सा रहने लगा। मैंने कहीं से कुण्डलिनी योग सीखा और सोचा

कि सब ठीक हो जाएगा। योग से मेरा खोया हुआ आनंद लौट आया, वह भी सूद समेत। मैंने आध्यात्मिक उन्नति भी बहुत की। उस समय तो इसके आधारभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का पता नहीं था, पर आज इसका पता चला है। **कुण्डलिनी एक चमत्कारिक मानसिक ध्यान छवि** है, जो एक स्वचालित यंत्र की तरह हर प्रकार से लाभ करती है। हुआ क्या कि कुण्डलिनी ने मेरे भटके हुए मन की शक्ति हर ली। इससे कुण्डलिनी की सहायता से अनायास ही मेरा मनोमय कोष विज्ञानमय कोष में बदल गया। विज्ञानमय कोष आनंदमय कोष में तब्दील हो गया। उक्त विकासात्मक दुनियादारी से मेरे प्रारम्भिक तीनों कोष बहुत विकसित हो गए थे। वैसे तो अद्वैत की सहायता से विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष को भी मैं इनके साथ विकसित कर रहा था, पर अंतिम दो कोशों को **रॉकेट गति** कुण्डलिनी योग से ही मिली जिससे **कुण्डलिनी जागरण** की तथाकथित मामुली सी झलक भी मिली थी।

इस पुस्तक के सभी अध्याय मूल रूप से हमारे पहले काम, 'कुंडलिनी विज्ञान' श्रृंखला की 'कुंडलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान' नामक पुस्तकों का हिस्सा थे। यदि आपने इन लेखों का आनंद लिया है, तो आपको पूर्ण संकलन में और भी बहुत कुछ मिलेगा।

इस पुस्तक को पढ़ने के लिए आपका धन्यवाद।

शुभमस्तु।

प्रेमयोगी वज्र द्वारा लिखित व अनुमोदित अन्य पुस्तकें~

1) Love story of a Yogi- what Patanjali says
2) Kundalini demystified- what Premyogi vajra says
3) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान
4) The art of self publishing and website creation
5) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला
6) कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है
7) बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी
8) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट
9) My kundalini website on e-reader
10) शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र- एक योगी की प्रेमकथा
11) श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम
12) सोलन की सर्वहित साधना
13) योगोपनिषदों में राजयोग
14) क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव
15) देवभूमि सोलन
16) मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र
17) बघाटेश्वरी माँ शूलिनी
18) म्हारा बघाट
19) भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस
20) Kundalini science~a spiritual psychology

ये सभी पुस्तकें औडियोबुक के रूप में भी उपलब्ध हैं।

इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु।